इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSKE 010

तृतीय पत्र : दर्शनशास्त्र : ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र

MSKE-010

तृतीय पत्र : दर्शनशास्त्र : ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र

विशेषज्ञ समिति

कार्यक्रम संयोजक : प्रोफेसर कौशल पंवार, संस्कृत संकाय, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या
प्रो. जवाहरलाल, श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत, विश्वविद्यालय दिल्ली	1, 2, 3, 4, 5, 6
डॉ, अवधेश प्रताप सिंह, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	7, 8, 9, 10, 11
प्रो. शिव शंकर मिश्रा, श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय दिल्ली	12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21
डॉ, पंकज के. मिश्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	22, 23, 24, 28, 29,30
प्रो. कमलेशकुमार सी. चौकसी, निदेशक भाषा विद्यापीठ, गुजरात विश्वविद्यालय, गुजरात	25, 26, 27

सचिवालयीय सहयोगः श्री अनिल कुमार मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव
सा. नि. एवं वि. प्र.,इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2023

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2023

ISBN-

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यटूर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

विषय सूची

पाठ्यक्रम परिचय

एम.ए. संस्कृत के छात्र के रूप में अब आप MSKE-010 **तृतीय पत्र : दर्शनशास्त्र : ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र** पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं यह एम. ए. संस्कृत का वैकल्पिक प्रश्न पत्र हैं। यह प्रश्न पत्र एम. ए. द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में अध्ययन किया जाएगा। इस वैकल्पिक पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको दर्शनशास्त्र में विशेषज्ञता दिलाना है जिसके आधार पर आप 'दर्शन वर्ग में अपनी विशेषज्ञता हासिल करेंगे। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको दर्शन में ब्रह्मसूत्र पातजंल योग दर्शन एवं अष्टांग योग को समझने की क्षमता का विकास करवाना है। इस पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए 30 इकाइयां हैं। यह पाठ्यक्रम 08 क्रेडिट का है

वेद : वैदिक सहिताएं और वैदिक व्याकरण का यह पाठ्यक्रम 8 खण्डों में विभाजित है। इस पाठ्यक्रम का प्रथम खंड ''वैदिक वाङ्मय का परिचय'' से संबंधित है। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत ऋक्, यजुष्, साम और अथर्व संहिताएँ, वेदों की शाखाएँ, वेदों की अपौरुषेयता और नित्यता का अध्ययन करेंगे तथा वैदिक परिभाषाएं (मन्त्र, संहिता, ब्राह्मण, ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग) का आप विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

पाठ्यक्रम का द्वितीय खंड वैदिक व्याखाकार एवं प्रमुख प्रतिपाद्य विषय से संबंधित है। इस खंड में आप वैदिक व्याख्याकारों एवं प्राच्य व्याख्याकारों यथा स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ, माधवभट्ट, वेंकटमाधव, उव्वट, भट्टभास्कर, हलायुध, सायण , महीधर, आनन्दतीर्थ, दयानन्द सरस्वती, अरविन्द, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, आर. एन. दांडेकर तथा प्रतीच्य व्याख्याकारों यथा रूडाल्फ वान राथ, वर्गेन, अलफ्रेड लुडविग, गेल्डनर, फ्रेडरिख मैक्समूलर, अलफ्रेड हिलब्रान्ट, रॉल्फ टी.एच. ग्रिफिथ, होरेस हेमन विल्सन का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। वेदों में काव्यसौन्दर्य और ललित कलाओं का अध्ययन करके भारतीय ज्ञान परंपरा में निपुणता प्राप्त करेंगे।

पाठ्यक्रम का तृतीय खंड ऋग्वेद संहिता से संबंधित है। इस खंड में आप ऋग्वैदिक सूक्तों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। यथा वरुण सूक्त, इन्द्र सूक्त, विश्वेदेवा सूक्त, उषा सूक्त, सूर्य सूक्त का अध्ययन करेंगे।

पाठ्यक्रम का चतुर्थ खंड यजुर्वेद संहिता से संबंधित है। इस खंड में आप यजुर्वेदीय सूक्तों का अध्ययन करेंगे यथा प्रजापति सूक्त (शुक्लयजुर्वेद अध्याय 23, 1—5), यजुर्वेद (अध्याय 32 मंत्र 1 — 16), यजुर्वेद (अध्याय 36 मंत्र 10 — 2,3,12,13,14,17,18,19, 22, 24) सूक्तों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

पाठ्यक्रम का पंचम खंड सामवेद संहिता से संबंधित है। इस खंड में आप सामवेदीय सूक्तों का अध्ययन करेंगे यथा आग्नेय पर्व (सामवेद, 1.1), पवमान पर्व (मंत्र 1 — 10) सूक्तों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। जिसमें सामवेद का आग्नेय पर्व (सामवेद, 1.1) तथा पवमान पर्व (मंत्र 1 — 10) के सूत्रों को समझेंगे।

पाठ्यक्रम का षष्ठ खंड अथर्ववेद संहिता से संबंधित है। इस खंड में आप अथर्ववेदीय सूक्तों का अध्ययन करेंगे यथा वाक् सूक्त (अथर्ववेद, 4.30), सूर्या सूक्त (अथर्ववेद,), कालसूक्त (अथर्ववेद,10.53), भूमिसूक्त (अथर्ववेद,12.1) सूक्तों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इस खंड के अध्ययन के पश्चात् आप इन सूत्रों में वर्णित राष्ट्र की भावना का विकास समझने में समर्थ होंगे।

इस पाठ्यक्रम का सप्तम खंड वैदिक व्याकरण से संबंधित है। इस खंड में आप वैदिक व्याकरण के सूक्तों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे तथा वैदिक व्याकरण से परिचित होकर व्याकरणिक परंपरा से अवगत होगें। इस खंड में आप ऋक प्रतिशाख्य परिभाषाएंः समानाक्षर, सन्ध्यक्षर, अघोष, सोष्म, स्वरभक्ति, यम, रक्त, संयोग, प्रगृह्य, रिफित, मंत्रपाठ परिचय (संहितापाठ, विकृतिपाठ, पदपाठ, क्रमपाठ इत्यादि), वैदिक स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित एवं एक श्रुति), वैदिक शब्दरूप एवं धातुरूप (लेट् लकार मात्र) का अध्ययन करेंगे।

पाठ्यक्रम का अष्टम् खंड निरुक्त से संबंधित है। जिसके रचनाकार आचार्य यास्क है। इस खंड में आप नामों के आख्यातजत्व का सिद्धान्त, उपसर्गों के द्योतकत्व अथवा वाचकत्व का सिद्धान्त, निरुक्त (अध्याय 7) :– 'त्रिविधा ऋचः, अनादिष्टदैवतमन्त्र, छन्दांसि, अग्नि, जातवेदस, वैश्वानर का निरूपण' का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

आशा और विश्वास के साथ कि MSKE-010 दर्शनशास्त्र : ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र का यह पाठ्यक्रम जो वैकल्पिक पाठ्यक्रम के रूप में दिया गया है आपको ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र के विषय में विशेषज्ञता प्राप्त करने में सहायक होगा। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की पाठ्य सामग्री को निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

1.	ब्रह्मसूत्र बादरायण (शांकरभाष्य)	2 इकाइयाँ
2.	ब्रह्मसूत्र बादरायण (शांकरभाष्य चतुःसूत्री)	4 इकाइयाँ
3.	ब्रह्मसूत्र–बादरायण (श्रीभाष्य, चतुःसूत्री)	5 इकाइयाँ
4.	पातंजलयोगदर्शन	3 इकाइयाँ
5.	अष्टांगयोग एवं कैवल्यस्वरूप	7 इकाइयाँ
6.	न्यायदर्शन	3 इकाइयाँ
7.	चतुर्विध प्रमाण एवं द्वादश प्रमेय निरुपण	3 इकाइयाँ
8.	अवशिष्ट पदार्थ निरुपण	3 इकाइयाँ
	कुल	**30 इकाइयाँ**

शुभकामनाओं के साथ।

खण्ड 1
ब्रह्मसूत्र– बादरायण (शांकरभाष्य)

इकाई 1 वेदान्त दर्शन का परिचय (अद्वैत वेदान्त और शंकराचार्य)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं :

- अद्वैत वेदान्त के प्रस्थानत्रयी के विषय में अध्येताओं को ज्ञान कराना।
- अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् के तीन प्रकार के सत्ता का ज्ञान कराना।
- ब्रह्म तटस्थ लक्षण का ज्ञान कराना।
- ब्रह्म के स्वरुपलक्षण का ज्ञान कराना।
- अद्वैतवेदान्त के अनुसार माया के स्वरूप का ज्ञान कराना।
- शंकराचार्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व का ज्ञान कराना।

1.1 प्रस्तावना

अखिलवेदान्तदर्शन के विकास का एक मात्र आधार निःसन्देह दर्शनसाहित्य के उद्धारक महर्षिव्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र ही है। यद्यपि अध्यात्म विद्या के प्रकाशक प्रमुख ग्रन्थ उपनिषद् है तथापि कालान्तर में जब उपनिषद् वाक्यों में विरोध प्रतीत होने लगा तब उन विरोधों का परिहार करने के लिये महर्षि बादरायण ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की। जिनका समय भारतीय विद्वान् षष्ठ शताब्दी स्वीकार करते हैं। ब्रह्म सूत्रों की संख्या 555 है। यद्यपि वादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र से पूर्व भी सूत्र रूप से वेदान्त तत्त्व के विचारक अनेक आचार्य हुये परन्तु समय के प्रवाह में विलुप्त होते गये। वर्तमान में उनका साहित्य तो उपलब्ध नहीं होता परन्तु ब्रह्मसूत्रों में जहां तहां उन आचार्यों का नामोल्लेख अवश्य हुआ है। ब्रह्मसूत्र पर आचार्यशंकर कृत शांकरभाष्य की लोक में अत्यधिक प्रतिष्ठा के कारण वर्तमान वेदान्तदर्शन के क्षेत्र में ब्रह्मसूत्र की सर्वाधिक प्रसिद्धि है। तथा वेदान्तदर्शन के क्षेत्र में आचार्यशंकर का अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त अत्यधिक प्रतिष्ठित एवं सर्वोपरि है। उसी प्रकार वेदान्तसूत्र पर लिखे गये भाष्यों में शांकरभाष्य की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। आचार्यशंकर द्वारा प्रवर्तित अद्वैत सिद्धान्त अत्यन्त ही व्यवस्थित एवं सामञ्जस्य पूर्ण होने कारण ही सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस दर्शन का महत्त्व इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब भी वेदान्त का विचार होता है शंकर का अद्वैत वेदान्त ही मानस पटल पर उपस्थित होता है। इससे ये स्पष्ट है कि अद्वैत वेदान्त दर्शन ही वेदान्त दर्शन पद से बोध्य है। जिसका मूल उपनिषद् साहित्य है। **वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम्।** वेदान्तदर्शन नाम से भी वेदस्य अन्तिमो शिरोभागः वेदान्तः साक्षात् उपनिषद् दर्शन ही सिद्ध होता है। वस्तुतः वेदान्त दर्शन का विकास तीन प्रस्थानों में हुआ है। श्रुति प्रस्थान जिसका प्रतिनिधि शास्त्र साक्षात् उपनिषद् है। दूसरा स्मृतिप्रस्थान जिसका प्रतिनिधि ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता है। तीसरा सूत्र प्रस्थान या न्याय प्रस्थानन जिसका प्रतिनिधि ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र या शारीरक सूत्र या वेदान्तसूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इन तीन प्रस्थानों के विभाजन का आधार आचार्यशंकर द्वारा तीनों ग्रन्थों पर लिखा गया भाष्य है जो लोक जन मानस में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त न केवल दर्शन साहित्य जगत में अपितु पूरे विश्व में प्रसिद्ध हैं।

1.2 अद्वैतवाद और शंकराचार्य

अद्वैत दर्शन के अनुसार अद्वैत ब्रह्म ही सद्वस्तु है। इसके अतिरिक्त दृश्यमान जगत् मिथ्या है। ब्रह्म सर्वव्यापक है सर्वत्र चैतन्य रूप से विद्यमान रहता है। उस ब्रह्म में ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न स्थित और लय को प्राप्त होता है। हलायुध कोश ग्रन्थ में अद्वयवाद के नाम से अद्वैत तत्त्व का विचार प्राप्त होता है। अद्वय से तात्पर्य आत्मा की अद्वैतता या आत्मा की सत् चित् आनन्दरूपता। वाचस्पत्यम् में अद्वैत पद की इस प्रकार व्याख्या की गई है – द्विधा ईतं द्वीतम् तस्य भावं द्वैतम्, द्वैतम् भेदः भेदो नास्ति यत्र तदद्वैतम्। अर्थात् अद्वैत शब्द भेदरहित है। आचार्यशंकर ने अद्वैतसिद्धान्त के प्रतिपादन में अद्वैत शब्द का प्रयोग परमार्थस्वरूप, सत्यस्वरूप आत्मा या ब्रह्म के लिये किया है। वस्तुतः इस अद्वैतवेदान्त या अद्वैतवाद से आचार्यशंकर तादात्म्य है। क्योंकि अद्वैतवाद कहने से आचार्यशंकर का बोध होता है आचार्यशंकर कहने से अद्वैतदर्शन का ज्ञान होता है। वस्तुतः आचार्यशंकर ने अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन के द्वारा न केवल आत्मा या ब्रह्म की सत्यता चिद्रूपता आनन्द रूपता सिद्ध किया है अपितु जगत् के मिथ्यात्व को भी सिद्ध किया है। आचार्यशंकर प्रतिपादित अद्वैततत्त्व निर्गुण निर्विशेष तथा निरुपाधिक है। देशकालवस्तु परिच्छेद रहित है। वह सत्, चित् व आनन्द रूप

है। इससे भिन्न जगत् है जिसका विवेचन आचार्य ने मायावाद के रूप में किया है। वस्तुतः माया को सत् असत् से विलक्षण मिथ्याप्रत्ययरूप स्वीकार किया है। जो ज्ञान से निवृत्त होने वाला तथा त्रिगुणात्मक है। परन्तु माया का सर्वथा अभाव नहीं है क्योकि माया अद्वैत ब्रह्म की शक्ति है जो ब्रह्म में ही रहती है। इस प्रकार आचार्यशंकर ने अद्वैतवाद सिद्धान्त के प्रतिष्ठा के द्वारा ब्रह्म की सत्यता तथा माया की अनिर्वचनीयता दोनों ही सिद्ध करते हैं।

1.3 वेदान्त दर्शन का परिचय

भारतीय वाङ्मय में वेदान्त दर्शन ज्ञानयोग परम्परा का मूल है। वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम्। वेदान्तपद से वस्तुतः उपनिषदः का साक्षात् ग्रहण होता है। उपनिषद् वैदिक साहित्य के चार विभागों में अंकित भाग है। वेदस्यान्तः चरमोत्कर्षः वेदान्तः। कर्म उपासना आदि का विवेचन वेद के संहिता भाग में तथा ब्राह्मणग्रन्थ भाग में है। तथा ज्ञान का विवेचन उपनिषद भाग में है इसलिये वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है वेदों का निष्कर्ष या शिरोभाग या सार। वस्तुतः वेदान्त दर्शन की प्रवृत्ति का प्रयोजन ब्रह्म के सत्यत्त्व, जगत् के मिथ्यात्व सिद्ध करने के साथ साथ ब्रह्म तथा जगत् के स्वरूप के सन्दर्भ में विविध दार्शनिक सम्प्रदायों में अनेक प्रकार से व्याप्त वैमत्यों का निराकरण भी है। दार्शनिक सम्प्रदायों में आत्म विषयक विप्रतिपत्तियां जैसे आत्मा का अनित्यत्व, अणुत्व, कर्तृत्व अकर्तृत्व भोक्तृत्वादि व्याप्त हैं उसी प्रकार जगतविषयक विप्रतिपत्तियां भी विद्यमान हैं जैसे जगत नित्य है, शून्य है, विज्ञान है, जगत् प्रकृति का कार्य है, जगत् ईश्वर का कार्य है इत्यादि। जिनका निराकरण भी आवश्यक था। क्योंकि जब तक ब्रह्म तथा जगत् के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा तब तक अधिकारि जिज्ञासु की जिज्ञासा की निवृत्त नहीं होती तथा ब्रह्म ज्ञान में प्रवृत्ति नहीं होगी। इसीलिये महर्षि वादरायण ने ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया तथा आचार्य शंकर ने शारीरकभाष्य की रचना करके न केवल ब्रह्म और जगत् के यथार्थ स्वरूप को उपस्थित किया अपितु विविध प्रकार के दार्शनिक वैमत्यों का निराकरण करके अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है।

1.4 अद्वैतवेदान्त के आधार प्रस्थानत्रयी

सर्वप्रथम वेदान्तशब्द का प्रयोग भी उपनिषद् साहित्य में ही प्राप्त होता है। परन्तु परवर्ति काल में उपनिषद् सिद्धान्त को आधार मान कर जिन सिद्धान्तों का विचार एवं विकास हुआ उनके लिये भी वेदान्त शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। वस्तुतः वेदान्त के सम्यक् परिचय प्रस्थानत्रयी के माध्यम से होता है। प्रस्थान शब्द का अर्थ है मार्ग वेदान्त के अध्ययन के मार्ग को प्रस्थान कहते हैं। ये प्रस्थान तीन हैं। सम्पूर्ण वेदान्त प्रस्थानत्रयी में विभक्त हैं। प्रस्थानत्रयी से तात्पर्य है मोक्ष तक ले जाने वाले या मोक्षमार्ग को बताने वाले तीन प्रस्थान या मार्ग या तीन आधार। प्रस्थानत्रयी जैसे कि नाम से ज्ञात होता है इसके तीन प्रस्थान है श्रुति प्रस्थान, स्मृति प्रस्थान तथा सूत्र प्रस्थान। इनमें प्रथम है–

1.4.1 श्रुतिप्रस्थान (उपनिषद् प्रस्थान)

ऋषयों मन्त्रद्रष्टारः इस वाक्य के अनुसार वैदिक ऋषि अध्यात्म विद्या के गूढ़रहस्यों का उद्घाटन करते हैं। तत्त्वज्ञान के मूल श्रोत उपनिषद् शास्त्र है। उपनिषदों में न केवल अध्यात्म विषयक चिन्तन के द्वारा अपितु लोकविषयक तथा परलोक विषयक विचार के द्वारा भी आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये तत्त्वों के

रहस्योद्घाटन के द्वारा लोककल्याण की चिन्ता का ऋषियों के उपदेश भी विद्यमान हैं। वस्तुतः प्रस्थान त्रयी वेदान्त के साथ वेद मूलक दर्शन के साधनों का भी प्रतिपादन करती है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धागोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सूधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।

उपनिषद् शास्त्र को श्रुतिप्रस्थान कहते हैं। उपनिषद् शब्द मुख्य रूप से ब्रह्मविद्या का बोधक शास्त्र है। ब्रह्मविद्या सर्वत्र समत्वबोधक विद्या है तथा अज्ञान ग्रन्थियों का निवारण या शिथिलीकरण केवल ब्रह्मविद्या मात्र से ही होती है। इस ब्रह्मविद्या का विचार वेद के जिस शिरोभाग या अवसान भाग से होता है उसे उपनिषद् शास्त्र कहते हैं। उपनिषद् शास्त्र में कथाओं के माध्यम से संवाद के माध्यम से ब्रह्मविद्या का उपदेश अत्यन्त सरल विधि से किया गया है। आत्मतत्त्व का उपदेशक उपनिषदों की संख्या 108 हैं परन्तु कालान्तर में कुछ उपनिषद् और भी जोड़ दिये गये। परवर्ती होने पर भी सभी उपनिषदों का वर्ण्य विषय ब्रह्मविद्या ही है। आचार्यशंकर ने 10 उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं। वैदिक साहित्य में उपनिषद् साहित्य की स्थिति विलक्षण है। जहाँ संहिता ब्राह्मण ग्रन्थ गृहस्थों के लिये कर्म का उपदेश करती है वहां उपनिषद् ज्ञानियों, साधकों योगियों के लिये ज्ञानमार्ग का उपदेश करती है। जीव ब्रह्म जगत् विषयक विचार उपनिषद् का महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्यविषय है। उपनिषद् के साध्न विरक्त योगी लोकपरलोक विषयक ऐश्वर्य से विरक्त मुमुक्षु होते हैं। इसीलिये उपनिषद् को अध्यात्म विद्या का मूल कहा है। उपनिषद् न केवल वेदान्तदर्शन का उपकारक शास्त्र है अपितु वैदिक अवैदिक सभी दर्शनों का उपकारक है। कठोपनिषद् भाष्य में उपनिषद् शब्द की इस प्रकार व्युत्पत्ति की है। सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विप्प्रत्ययस्य रूपमिदमुपनिषदिति। इसी प्रकार वेदान्तसार के विद्वन्मनोऽ्जनी टीका में भी उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्त होती है– उपनिषच्छब्दों ब्रह्मात्मैकसाक्षात्कारविषयः। उपनिपूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य सद्लृ विशरणगत्यवादनेष्वित्यस्य धातोरुपनिषदिति रूपम्। तत्रोपशब्दः सामीप्यमाचष्टे तच्च संकोचाभावात् सर्वान्तरें प्रत्यगामिनि र्प्यवस्यति। निशब्दों निश्चयवचनः। सोऽपि तत्तत्त्वं निश्चिनोति। अर्थात् उपनिषद् का प्रतिपाद्य ही ब्रह्मात्मैकत्व साक्षात्कार है। उपनिषद् पद में प्रयुक्त उप पद समीप अर्थ के वाचक है। नि शब्द निश्चय का वाचक है। जिससे तत्त्वों का निश्चय हो सके। उपनिषद् शब्द में सद् धातु विशरण, गति और अवसाद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है विशरण का अर्थ है नाश, गति का अर्थ है प्राप्ति या प्रवृत्ति तथा अवसाद का अर्थ है शिथिल करना। अर्थात् गुरु के समीप बैठकर निश्चित रूप से गुरु के उपदेश के अविद्या का नाश और विद्या की प्राप्ति हो इस प्रकार के शास्त्र को उपनिषद् कहते है। शंकराचार्य ने बारह उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं। जिनमें सभी उपनिषदों का तत्पर्य अद्वैतब्रह्म में ही सिद्ध किया है। केनोपनिषद् पर दो भाष्यों की रचना की है। पद भाष्य तथा वाक्य भाष्य दोनों की प्रक्रिया भिन्न है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से भी दोनों में भेद है। केनोपनिषद् के भाष्य में आचार्यशंकर ने उपनिषद् के स्वरूप का निर्वचन करते हुये कहा है कि जिस शास्त्र के अध्ययन मनन और निदिध्यासन से अविद्या का नाश होता है उस शास्त्र को उपनिषद् शास्त्र कहते हैं। यत् यस्यादृशशास्त्रस्य अध्ययनं मननं निदिध्यासनं चाविद्यायाः नाशाय भवति तादृशं शास्त्रं उपनिषत्शास्त्रमिति। केनोपनिषद्। पुनः जिस शास्त्र के आचरण से अज्ञान और उसके कार्य जन्ममरणादि दुखों का नाश हो उस शास्त्र को उपनिषद् शास्त्र कहते हैं। यस्य च शास्त्रस्य आचरणेन अज्ञानं तज्जन्यं दुखं जन्ममरणादिकं विनश्यति तादृशं शास्त्रं उपनिषच्छास्त्रमिति। श्रुति में भी तरति शोकमात्मवित् इस वाक्य के द्वारा अध्यात्मविद्या से दुखों की निवृत्ति कही गई

है। अतः उपनिषद् शास्त्र को मोक्ष शास्त्र भी कहते हैं। सा विद्या या विमुक्तये, विद्ययामृतमश्नुते इति। यद्यपि अध्यात्मविद्या दो प्रकार से कही गई है प्रथम ब्रह्म विद्या तथा द्वितीय ब्रह्मविद्या प्रतिपादक उपनिषदादि शास्त्र। जहाँ शास्त्र में ब्रह्म जीव जगत् के स्वरूप तथा परस्पर सम्बन्ध, ब्रह्मप्राप्ति के उपायों का प्रतिपादन किया गया हो उस शास्त्र को उपनिषद् शास्त्र कहते हैं। उपनिषदों की संख्या के विषय में मुक्तोपनिषद् में कहा गया है–

सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्।
सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तनम्। (मुक्तोपनिषद्)

इनमें प्रमुख उपनिषद् जिनपर आचार्यशंकर ने भाष्य लिखा है वे हैं– ईश–केन–कठ–मुण्डक–माण्डुक्य–प्रश्न–ऐतरेय–तैत्तिरीय–छान्दोग्य और बृहदारण्यकमिति।

1.4.2 स्मृतिप्रस्थान

श्रीमद्भगवद्गीता वेदान्त के द्वितीय स्मृति प्रस्थान है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिये उपदेश वर्णित हैं। श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् के मुख से स्वतः आविर्भूत होने के कारण वेद की तरह ही अपौरुषेय माना जाता है। इसीलिये यह शास्त्र भी ब्रह्मविद्या प्रतिपादक शास्त्र है। ब्रह्म प्राप्ति के लिये निष्काम कर्म भक्ति ज्ञान तथा ज्ञानकर्म समुच्चय आदि साधनों का निदेश किया गया है। प्रथम छः अध्यायों में निष्कामकर्मयोग का द्वितीय छः अध्यायों में भगवद्भक्तियोग का तथा तीसरे छः अध्यायों में ज्ञानयोग का रहस्य बतलाया गया है। आचार्यशंकर ने श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्य का आरम्भ द्वितीय अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से किया है। आचार्यशंकर के भाष्य में स्पष्ट किया गया है कि तत्त्वज्ञान से मोक्षलाभ होता है, तथा ज्ञानकर्मसमुच्चय से मोक्ष लाभ का निषेध किया गया है। आचार्य शंकर कहते हैं– **गीतासु केवलादेव तत्त्वज्ञानान्मोक्षप्राप्तिः न कर्मसमुच्चिताद् इति निश्चितार्थः श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य उपोद्घात।**

महर्षि व्यास ने महाभारत के रचना के द्वारा न केवल वैदिक साहित्य का अपितु भारतीय संस्कृति और सभ्यता का भी दीप प्रज्जवलित किया। यही कारण है कि महाभारत के अंशभूत श्रीमद्भगवद्गीता का प्रभाव न केवल भारतवर्ष में अपितु सम्पूर्ण विश्व में उपनिषद् साहित्य की तरह प्रतिष्ठित है। गीता में निहित निगूढ तत्त्वों का ज्ञान बाल युवा वृद्ध सभी के लिये महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इस गीता शास्त्र में सद्गृहस्थों के लिये कर्म का उपदेशक शास्त्र है, भगवद्भक्तों के लिये भक्ति का तथा ज्ञानियों के लिये ज्ञान का उपदेश शास्त्र है। श्रीमद्भगवद्गीता सभी का कल्याण करती है। श्रीमद्भगवद्गीता के ध्यानश्लोक में इस सन्दर्भ में कहा है–

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयम्।
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्येमहाभारतम्।।

अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायनीम्।
मम्बत्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता यद्यपि वेदमूलक है तथापि गीता का वैशिष्ट्य प्रतिपादन करते हुये विद्वान् कहते हैं कि वेद तो भगवान् के निःश्वास से निकला है, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता तो साक्षात् भगवान् कृष्ण स्वयं योगबल से अर्जुन के लिये उपदेश किया है। अहमादिर्हि देवानां महर्षिणांच सर्वशः इत्यादि वाक्यों से भगवान् की जगत

कर्तृत्व तथा अनादित्व स्वतः सिद्ध होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय अर्जुनविषादयोग है। इस अध्याय में संसार के कारणभूत रागद्वेषादि दोषों का उपदेश किया गया है। तथा जैसे रोगनिवारण के लिये औषधि का सेवन अपेक्षित होता है वैसे ही क्षत्रिय धर्म से गिरते हुये अर्जुन को औषधि के रूप में गीता का उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण ने दिया है। यहाँ सर्वप्रथम दुःखस्वरूप शोकमोहादि के स्वरूप का उपदेश कर उसके निवृत्ति के उपायों का उपदेश द्वितीय अध्याय से अठारह अध्याय तक किया गया है। द्वितीय अध्याय में आत्मा के स्वरूप, आत्मा के नित्यत्व अनादित्व आदि का विचार, अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराः। न हन्यते हन्माने शरीरे। आत्मज्ञान के उपाय आदि विषयों का विचार इस अध्याय में किया गया है। तथा तीसरे अध्याय में कर्मयोग का उपदेश किया गया है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

तथा

योगस्थः कुरुकर्माणि संगं त्यक्तवा धनञ्जय।

चतुर्थ अध्याय में योग के परम्परा तथा ज्ञानयज्ञ की श्रेष्ठता का उपदेश है। पांचवे अध्याय में कर्मसन्यास और कर्मयोग में भेद का उपदेश है। तथा छठवें अध्याय में ध्यान योग, सम्यक् दर्शन के स्वरूप तथा आत्मसंयम का विस्तार पूर्वक उपदेश है। सप्तम अध्याय में परा अपरा विद्या का उपदेश है। अष्टम अधयाय में ब्रह्म के स्वरूप, अध्यात्म के स्वरूप, कर्म के स्वरूप अधिभूत अधिदैव अधियज्ञ तथा क्षराक्षरब्रह्म के स्वरूप आदि का उपदेश है।

**किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्मपवुरुषोत्तम।
किमधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।**

**अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।**

नवम अध्याय में निर्गुणब्रह्म के स्वरूप ज्ञान तथा निर्गुण भक्ति के माहात्म्य का उपदेश है। इसी अध्याय में ईश्वर की व्यापकता तथा सृष्टिसंहार के कारणता का उपदेश है। दसवें अध्याय में ईश्वर की विभूति का वर्णन है। तथा ग्यारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को विश्वरूप दर्शन कराने का वर्णन है। बारहवें अध्याय में सगुण निग्रुण ब्रह्म के उपासना का फल विचारित है। मुख्य बात यह है कि प्रथम छः अध्याय में प्रथम छः अध्याय में जीवात्म विषयक विचार किया गया है। जिसका त्वं पद के द्वारा उपनिषदों मे विवेचन किया गया है। द्वितीय छः अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप का विचार है। उपनिषदों में तत् पद के द्वारा जिसका विचार किया गया है। तथा अन्तिम छः अध्यायों में क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। इत्यादि के द्वारा जीव और ब्रह्म के स्वरूप का विचार किया गया है। तेरहवें अध्याय में आत्मानात्म शब्द के स्वरूप का तथा आत्मा और ब्रह्म के अभेद का विवेचन किया गया है। चौदहवें अध्याय में गुणों के स्वरूप उनके फल तथा फलों में भेद का विस्तार पूर्वक उपदेश किया गया है। पुरुषोत्तम अध्याय नामक पन्द्रहवें अध्याय में संसारवृक्ष के दृष्टान्त के द्वारा निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। सोलहवें अध्याय में कर्तव्याकर्तव्य के विचार पूर्वक सात्विक आचरण तथा सात्विक आहार यज्ञ तप दान आदि का उपदेश किया गया है। सत्रहवें अध्याय में श्रद्धा का तथा अठारहवें अध्याय में सन्यास का उपदेश

किया गया हैं इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के लिये अनासक्त होकर ईश्वरार्पण बुद्धि से निष्कामकर्म का उपदेश लोक कल्याण के लिये दिया है। गीता का वैशिष्ट्य गीता माहात्म्य में इस प्रकार बताया है गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः इति।

1.4.3 न्यायप्रस्थान या सूत्र प्रस्थान

महर्षि बादरायण व्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र न्यायप्रस्थान का मूलग्रन्थ है। इसे शारीरक सूत्र भी कहते हैं। ब्रह्मसूत्र पर आचार्यशंकर ने अद्वैतभाष्य लिखकर अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है। ब्रह्मसूत्रों के गूढरहस्यों को स्पष्ट करने के लिये सरल शैली में गम्भीर भाष्य का प्रणयन आचार्य ने किया है। आचार्यशंकर कृत भाष्य का वैशिष्ट्य वाचस्पति मिश्र ने भामत्ती में इस प्रकार किया है।

भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं इति उक्तिं समासादितवान्।

भाष्य का लक्षण के अनुसार ही आचार्य ने भाष्य लिखा है।

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः।।

शांकरभाष्य प्रसादगुण से युक्त है। वस्तुतः न्याय प्रस्थानात्मक ब्रह्मसूत्र में उपनिषद् के सार तत्त्व का विचार किया गया है। उपनिषद् प्रतिपाद्य निर्विशेष ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रस्थान का प्रधान विषय है। सूत्र प्रस्थान के आधार भूत ब्रह्मसूत्र चार अध्यायों में विभक्त है। इसके चार अध्याय हैं समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय, तथा फलाध्याय। इन चारों अध्यायों में ब्रह्मविचार तथा तद्विषयक प्रमाण, वेदान्तवाक्यों का ब्रह्म में समन्वय प्रतिपादित है। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा इसका प्रथम सूत्र है जिसमें ब्रह्मविचार की प्रतिज्ञा की गई है। वस्तुतः ब्रह्मसूत्र ब्रह्ममीमांसा शास्त्र है। मीमांसा शास्त्र दो हैं पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा। पूर्वमीमांसा शास्त्र का प्रतिपाद्य है धर्मविचार। जिसमें यज्ञादि कर्म का प्रतिपादन है यज्ञादि कर्म पुरुष के व्यापार के आधीन होते हैं। उत्तर मीमांसा शास्त्र ज्ञानप्रतिपादक शास्त्र है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म विचार है जो सिद्धवस्तु के आधीन होता है। ब्रह्म नित्यनिरतिशय रूप है अतः धर्मविचार और ब्रह्म विचार में है। ब्रह्मसूत्र उपनिषद् का साक्षात् उपकारक शास्त्र होने से आत्मतत्त्व प्रतिपादक शास्त्र है। ब्रह्मसूत्र को शारीरकसूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वाक्यमीमांसा वाक्यशास्तादि अनेक नामों से विद्वान् व्यवहार करते हैं। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में वेदान्तशब्द को अद्वैत प्रतिपादक कहा गया है इससे इस शास्त्र का वैशिष्य्य सिद्ध होता है।

आत्मैक्यपरः वादरायणः शाण्डिल्य भक्तिसूत्र

ब्रह्मसूत्र का प्रथम अध्याय समन्वयाध्याय है। इसके आरम्भ में सूत्रों पर भाष्य लिखने से पूर्व आचार्यशंकर ने अध्यास भाष्य लिखकर अचेतन जड जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध किया है तथा जिज्ञासाधिकरण में निर्गुण निर्विशेष अद्वैत चेतन तत्त्व के जिज्ञासा की प्रतिज्ञा की है। जन्माद्यधिकरण के भाष्य में निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म के स्वरूप और तटस्थ लक्षण का निदेश किया गया है। तथा ऋग्वेदादि शास्त्रों का कारण भी ब्रह्म है यह प्रतिपादन किया गया है। तृतीय शास्त्रयोनित्वाधिकरण में ब्रह्म के जगत्कारणत्व में ऋग्वेदादि शास्त्र को ही प्रमाण बताया गया है। अर्थात् शास्त्र के द्वारा ही ब्रह्म के स्वरूप तथा जगत्कारणत्व का निश्चय होता है। चतुर्थ समन्वयाधिकरण में प्रतिपादित

है कि सभी उपनिषद्वाक्यों का अद्वैत निर्विशेष ब्रह्म में ही समन्वय होता ह। सम्पूर्ण उपनिषद्वाक्य अद्वैत ब्रह्म के स्वरूप प्रतिपादन में तथा जगत् के जन्म स्थिति और लय के कारण ब्रह्म को ही स्वीकार करते हैं। वस्तुतः समन्वयाध्याय का विषय ही श्रुति स्मृति द्वारा ब्रह्म को जगत्कारण के रूप में प्रतिष्ठित करना। ब्रह्म की अद्वैत रूपता श्रुति से ही सिद्ध होती है।

द्वितीय अध्याय में जगत्कारण विषयक वैमत्य का निराकरण किया गया है। उनमें मुख्य रूप से सांख्य का प्रधान कारणवाद, वैशेषिक का परमाणुकारणवाद, बौद्धों का विज्ञानकारणवाद तथा शून्यकारणवाद जैनों का स्यादवाद का निराकरण किया गया है। द्वितीय अध्याय में स्मृतिवाक्य तथा तर्क के द्वारा वादियों के मत का निराकरण किया गया है। द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में भूतों की उत्पत्ति तथा जीवों के स्वरूप प्रतिपादन में वादियों के मत का निराकरण किया गया है। चतुर्थ पाद में प्राणों की उत्पत्ति के विषय में वादियों के मत का परिहार किया गया है। तथा सूक्ष्मशरीर के सृष्टि के विषय में प्राप्त श्रुतियों के विरोध का परिहार किया गया है। तृतीय अध्याय का प्रतिपाद्य विषय अविद्या उपहित चैतन्य तथा अन्तःकरण उपहित चैतन्य के संसारगति का विचार किया गया है। द्वितीय पाद में तत्! त्वं पदारर्थ, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाभेदों विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है। तृतीय पाद में वेदान्तेतर सम्प्रदायों में प्रतिपादित विज्ञानों का भेद पूर्वक विचार किया गया है। तथा चतुर्थ पाद में उपनिषद् प्रतिपादित आत्मतत्त्व का ज्ञा नही परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष का कारण है सिद्ध किया गया है। तथा परा अपरा विद्या का निरूपण भी इसी पाद में किया गया है। चतुर्थ अध्याय फलाध्याय है। इसमें फल के आश्रय, जीवनमुक्ति, जीवों की गति आदि विषयों का निरूपण किया गया है।

1.5.1 सत्ता त्रैविध्य

अद्वैतवेदान्त में जगत् की तीन सत्ता मानी गई है। पारमार्थिकसत्ता व्यावहारिक सत्ता तथा प्रातिभासिक सत्ता। सत् पदार्थ से तात्पर्य है जिसका उत्तरकलीन ज्ञान से बाध न हो। सत्यत्वं बाधराहित्यम्। तथा असत् पदार्थ जो उत्तर कालीन ज्ञान से बाध हो। असत्यत्वम् बाध्यत्वम्। अद्वैत वेदान्त में सत्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये त्रिकालाबाध्यत्वंस त्यत्वम् यह प्रयोग करते हैं। अर्थात् जो जीनों कालों में तीनों अवस्थाओं में जिसका स्वरूप बाधित न हो वह एक रूप से ही अवस्थित हरो वही सत्य है। आचार्यशंकर के अनुसार– एकमेव ह्यवस्थितोयोर्थः स परमार्थः। अर्थात् ब्रह्म ही एक ऐसा तत्त्व है जिसका तीनों कालों तीनों अवस्थाओं में बाध नहीं होता सर्वदा सर्वत्र निर्बाध है। जो अक तथा अद्वितीय है। ब्रह्मभिन्न सकल नानात्मक प्रपञ्च जगत मिथ्या है। क्योंकि ब्रह्मरूप अधिष्ठान के ज्ञान से जगत्ज्ञान का बाध होता है। अतः ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है।

1.5.1.1 प्रातिभासिक सत्ता

प्रातिभासिक सत्ता का तात्पर्य है जो प्रतीतिकाल में सत्यतया प्रतिभासित हो, परन्तु उत्तर काल में बाधित हो जाय। जैसे रज्जु में सर्प या शुक्ति में रजतादि। मरुमरीचिकातोयादि पदार्थ आधारहीन नहीं हैं स विषय में आचार्यशंकर का अभिप्राय है कि नहि मृगतृष्णिकादयोऽपि निरास्पदा भवन्ति। शांकरभाष्य। प्रतीति पूर्वकाल में रज्जु से सर्पज्ञान उत्पन्न होती है वर्तमान में उसी के आधार पर सर्पज्ञान की अवस्थिति है और भविष्य में इसी आधार में रज्जुज्ञान के उदय होने पर सर्पज्ञान बाधित हो जाता है। अतः रज्जुसर्प का ज्ञान आकाशपुष्प के समान निराधार नहीं है परन्तु बाध होने से

सत्य भी नहीं है।

1.5.1.2 व्यावहारिक सत्ता

इस जगत् के समस्त व्यवहारगोचर पदार्थों में रहती है। इनमें जगत् के पदार्थों में पाँच धर्म दृष्टिगोचर होते हैं अस्ति, भाति, प्रिय, रूप तथा नाम। इनमें प्रथम तीन ब्रह्म के रूप हैं, और अन्तिम दो जगत् के। सांसारिक पदार्थों का कोई न कोई नाम है और कोई न कोई रूप भी होता है। इन नाम रूपात्मक वस्तुओं की सत्ता व्यवहार के लिए नितान्त आवश्यक है। परन्तु ब्रह्मात्मैक्यज्ञान की उत्पत्ति होने पर जगत् के पदार्थों का यह अनुभव बाधित हो जाता है, अतः एकान्त सत्य नहीं है। व्यवहारकाल में सत्य होने के कारण जगत् के निरात्मक पदार्थों की सत्ता व्यावहारिक है। आचार्यशंकर का मत है कि सर्वव्यवहाराणामेव प्राग्ब्रह्मात्मताविज्ञानात् सत्यत्वोपपत्तेः। प्राग्ब्रह्मात्मताप्रतिबोधात् उत्पन्नः सर्वो लौकिको वैदिकश्च व्यवहारः। ब्रह्मसूत्र। इस प्रकार सकल पदार्थों में एक विलक्षण पदार्थ है जो त्रिकाल में अबाध्य होने में ऐकान्तिक सत्य है, वही ब्रह्म है। अतः ब्रह्म की सत्ता की पारमार्थिक सत्ता हैं।

1.5.1.3 पारमार्थिक सत्ता

अद्वैत वेदान्त की परम्परा में ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है यह सिद्ध है। तथा ब्रह्म अद्वैत वेदान्त का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। वस्तुतः ब्रह्म निर्विषयक है। तथापि जब सोपाधिक होता है तब ब्रह्म का जगत् के रूप में विवर्त होता है। यही कारण है कि वादरायण व्यास ने सूत्र ग्रन्थ में तथा आचार्य शंकर ने भाष्य में ब्रह्म के स्वरूप लक्षण और तटस्थलक्षण का विचार किया है।

1.5.2 ब्रह्म के लक्षण

ब्रह्म निर्विषयक है अतः सर्वथा किसी भी विकार परिणाम से शून्य है तथापि अनादि अविद्याजन्य संयोग के कारण ब्रह्म सविषयक प्रतीत होता है। सब्रह्म की सविषयक प्रतीति अध्यास के कारण होता है जिसका विशद विचार अध्यास प्रकरण में किया गया है। अतः जब अविद्योपाधि से उपहित होता है तब ब्रह्म जगज्जन्मादि का कारण होता है जो ब्रह्म का तटस्थलक्षण है। तथा जब निर्विषयक निरुपाधिक होता है तब ब्रह्म अपने स्वरूप में अवस्थित होता है ब्रह्म अपने स्वरूपावस्थिति सच्चिदानन्दरूप होता है जो उसका स्वरूप ल्खण है। अतः ब्रह्म के दोनों लक्षण ही इस अधिकरण में विचार किये गये हैं।

1. तटस्थलक्षण

ब्रह्मसूत्र के जन्माद्यस्य यतः सूत्र में ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का विचार किया गया है। तटस्थ लक्षण उसे कहते हैं जो लक्ष्य के यावत् स्थिति काल में न रहकर अन्य का व्यावर्तक हो, जैसे पृथिवी का तटस्थ लक्षण गन्ध है, गन्धवती पृथिवी। क्योंकि गन्ध पृथिवी में सभी काल में नहीं रहता। महाप्रलय में, परमाणु में और उत्पत्ति कालिक घटादि में नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्म का तटस्थ लक्षण जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय का कारण होना है। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। इत्यादि श्रुति ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का ही प्रतिपादन करती हैं। अर्थात् सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का जो कारण है, वही ब्रह्म है। ब्रह्म की जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय की कारणता है, वह असाधरण धर्म होने से ब्रह्म का लक्षण है। आचार्यों ने लक्षण का लक्षण इस प्रकार किया है– **लक्ष्यतेऽनेनेति, लक्ष्यते यद् वेति तल्लक्षणम्।**

2. **स्वरूपलक्षण**

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियां ब्रह्म के स्वरूपलक्षण का प्रतिपादन करती हैं। आचार्यशंकर ने श्रुति में प्रयुक्त सत्यादि शब्दों के अर्थों की मार्मिक अभिव्यञ्जना की है। यद्यपि सत्यम् ज्ञानम् तथा अनन्तम् पद समानविभक्तिक होने से ब्रह्म के विशेषण प्रतीत हो रहे हैं। ब्रह्म विशेष्य है और सत्यादि विशेषण हैं। परन्तु विशेषणों की सार्थकता तभी मानी जा सकती है, जब एकजातीय अनेक विशेषण युक्त अनेक द्रव्यों की सत्ता विद्यमान हो। ब्रह्म अद्वितीय है अतः इन विशेषणों की उपपत्ति नहीं होती। इस विषय में आचार्यशंकर का मत स्पष्ट है ये विशेषण लक्षणार्थ प्रधान हैं। विशेषण और लक्षण में अन्तर होता है। विशेषण विशेष्य को उसके सजातीय पदार्थों से ही व्यावृत कर देता है। परन्तु लक्षण उसे सभी से व्यावृत्त कर देता है। अतः ब्रह्म के एक होने के कारण सत्य, ज्ञान और अनन्त ब्रह्म के लक्षण हैं, विशेषण नहीं। सत्य पद का अर्थ है अपने निश्चित रूप से कथमपि व्यभिचरित न होने वाला पदार्थ। यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरितं तत् सत्यम्। कारणसत्ता ब्रह्म में कारणत्व होने पर उसमें मृतिका के समान अचिद्रूपता प्राप्त न हो जाय, अतः ब्रह्म ज्ञान रूप कहा गया है। यही ज्ञान का अर्थ है अवबोध। जो वस्तु किसी से अविभक्त न हो सके। वही अनन्त है।

1.5.3 माया

माया अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त का आधार है। निर्विशेष, निर्लक्षण ब्रह्म से सविशेष सलक्षण जगत् की उत्पत्ति क्यों, कैसे हुई, एक ब्रह्म से नानात्मक जगत् को सृष्टि कैसे हुई, प्रश्नों के यथार्थ समाधान माया के स्वरूप को जानने से होता है। जिसमें विश्व जाना जाता है या विश्व की कल्पना की जाती है, वह माया है। आचार्यशंकर ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप पर्याय के रूप में किया है। परन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने इन दोनों शब्दों मे सूक्ष्म अर्थभेद की कल्पना की है। परमेश्वर की बीजशक्ति का नाम माया है। माया रहित होने पर परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती और न वह जगत् की सृष्टि करता है यह अविद्यात्मिका बीजशक्ति अव्यक्त कहलाती है, यह माया त्रिगुणात्मिका, ज्ञानविरोधी भावरूपा है। भावरूप कहने का अभिप्राय है कि माया का अभाव नहीं है। पंचदशीकार माया का लक्षण करते हैं–

चिदानन्दमयब्रह्मप्रतिबिम्बसमन्विता।
तमोरजःसत्त्वगुरगा प्रकृतिर्द्विविधा च सा।
सत्त्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते।

अर्थात् तीनों गुणों के साम्यावस्था का नाम प्रकृति है, वहीं शुद्धसत्वप्रधाना होने के कारण माया शब्द से कही जाती है और वह माया ब्रह्म के एक देश में रहती है तथा ब्रह्म को ही विषय करती है। माया ईश्वर की शक्ति कही जाती है तथा शक्ति और शक्तिमान का अभेद होता है। अतः द्वैतापत्ति नहीं है। माया न तो सत् है, न असत्। सदसत् से विलक्षण होने से वह अनिर्वचनीय हैं। जो सदसद् रूप से न कहा जा सके वह अनिर्वचनीय होता है। माया सत् नहीं है, क्योंकि उसका ब्रह्मज्ञान से बाध होता है। सत् त्रिकालाबाधित होता है। माया सत् होती, तो उसका बाध नहीं होता। माया असत् भी नहीं है। क्योंकि कार्यरूप से उसकी प्रतीति होती है। असत् पदार्थ जैसे पुष्प का कार्यरूप से ज्ञान नहीं होता। अतः सदसद्विलक्षण होने से माया अनिर्वचनीय है। आचार्यशंकर विवेकचूड़ामणि में माया के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं–

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
सांगाप्यनंगाप्युभयात्मिका नो महद्भूताऽनिर्वचनीयरूपा।

अर्थात् माया सत् भी नहीं है, असत् भी नहीं है और उभयरूप भी नहीं है। वह न भिन्न है, न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न उभयरूप है। न अंग सहित है, न अंगरहित है और न उभयात्मिका ही है। किन्तु वह अत्यन्त अद्भुत अनिर्वचनीय रूप है।

इसीलिए आचार्यशंकर ने माया का स्वरूप को स्पष्ट करते हुये स्पष्ट करते हैं कि माया भगवान् की अव्यक्तशक्ति है, जिसके आदि का पता नहीं चलता, वह गुणत्रय से युक्त अविद्या रूपिणी है। उसका ज्ञान उसके कार्यों से होता है। वही इस जगत् को उत्पन्न करती है

प्रव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या।
कार्यानुमेया सूधियैव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते।

इस अनिर्वचनीया माया की आवरण और विक्षेप दो शक्तियां हैं। जिनके सहयोग से ब्रह्म के यथार्थ वस्तुस्वरूप को आवृत्त कर उसमें अवस्तु रूप जगत् की प्रतीति कराती है। आवरणशक्ति ब्रह्मा के शुद्ध स्वरूप को मानो ढक देती है और विक्षेपशक्ति उस ब्रह्म में आकाश आदि प्रपञ्च को उत्पन्न कर देती है। जिस प्रकार रज्जु का अज्ञान अज्ञानावृत्त रज्जु में अपनी विक्षेपशक्ति से सर्पादि की उद्भावना करता है, ठीक उसी प्रकार माया भी अज्ञानाच्छादित आत्मा में शक्ति के बल पर प्रकाशादि जगत् प्रपञ्च को उत्पन्न करती है। इस प्रकार मायोपाधिक ब्रह्म ही जगत् का रचयिता है। चेतन पक्ष के अवलम्बन करने पर ब्रह्म जगत् का निमित्तकारण है और उपाधिपक्ष की दृष्टि से ब्रह्म ही उपादानकारण है। अतः ब्रह्म की जगत कर्तृता में माया ही प्रधान कारण है।

1.6 षङ्कराचार्यस्य व्यक्तित्वं कृतित्वञ्च,

प्रस्थानत्रयी के भाष्यकार आचार्यशंकर अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं। आचार्यशंकर के जन्म समय के विषय में विद्वानों में वैमत्य है कुछ विद्वान् आचार्य का जन्म ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी मानते हैं परन्तु इतिहासकारों का मत है कि आचार्यशंकर का समय 788–820 ईस्वी है। इनका जन्म केरल प्रदेश के पूर्णानदी के तट पर कालटी कालडी नामक ग्राम में प्रौढविद्वान् धर्मनिष्ठ श्रीशिवगुरु तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुभद्रा देवी के गर्भ से वैशाखशुक्लपञ्चमी तिथि में हुआ। भगवान् शंकर के आराधना से इनके माता पिता को सर्वगुण सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति हुई। इसीलिये इनका नाम शंकर रखा गया। आचार्य शंकर एक वर्ष की आयु में ही अपने मातृभाषा में अपना भाव प्रकट करने लग गये थे। दो वर्ष की आयु में आते आते अपने माता से पुराणों की कथा सुनकर कंठस्थ कर लिये। तीन वर्ष में ही इनका चूडाकरण संस्कार हो जाने के उपरान्त इनके पिता का देहावसान हो गया। पांच वर्ष में यज्ञोपवीतादि संस्कार के सम्पन्न हो जाने के बाद गुरु के गृह विद्याध्ययन के लिये चले गये। सात वर्ष में वेद वेदाङ्गादि शास्त्रों का अध्ययन करके पुनः घर वापस आ गये। वस्तुतः आचार्यशंकर असाधरण प्रतिभा सम्पन्न थे। अपने माता से संन्यास की आज्ञा मांगी परन्तु इनकी माता ने संन्यास की अनुमति नहीं दी। फिर एक दिन अपनी माता के साथ स्नान के लिये शंकर नदी गये वहां एक मगरमच्छ ने पकड़ लिया। पुत्र को कष्ट में देखकर माता विचलित हो गई। तब शंकर ने अपनी माता से कहा यदि तुम मुझे सन्यास की अनुमति दोगे तो यह मगरमच्छ मुझे छोड़ देगा। माता ने शीघ्र ही उसे सन्यास की आज्ञा प्रदान कर दी। तब मगरमच्छ ने शंकर को छोड़ दिया। और तह माता की

आज्ञा पाकर आचार्य शंकर आठ वर्ष की अवस्था में सन्यास के लिये निकल गये। किन्तु घर से बाहर जाते समय माता को उसके मृत्यु के समय आने का वचन दिया। घर से निकलकर नर्मदा के तट पर आकर आचार्य गोविन्दभगवत्पाद से दीक्षा ली, तथा गुरु के उपदेशानुसार साधना के द्वारा अपने बाल्य काल में ही योगादि अनेकविद्याओं में सिद्धि प्राप्त कर लिया। आचार्यशंकर की साध्ना और प्रतिभा को देख कर इनके गुरु आचार्य गोविन्दभगवत्पाद बहुत प्रसन्न हुये तथा काशी जाकर वेदान्तभाष्य के रचना की आज्ञा दी। इस प्रकार काशी जाकर आचार्य की प्रसिद्धि होने लगी। काशी में ही आचार्य शंकर का सदानन्द नामक प्रथम शिष्य हुआ। बाद में पद्मपादाचार्य आदि अनेक शिष्य हुये। आचार्यशंकर के विषय में प्रसिद्धि है कि

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान्भाष्यं द्वात्रिंशेमुनिरभ्यगात्।।

1.6.1 आचार्य की प्रमुख रचनायें

आचार्यशंकर की प्रमुख रचनाओं में ब्रह्मसूत्रभाष्य, उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य, विष्णुसहस्त्रनामभाष्य, सनत्सुजातीयभाष्य, विवेकचूडामणि, हस्तामलकभाष्य, प्रबोध सुधाकर, उपदेश सहस्त्री, सौन्दर्यलहरी, पंचीकरण, प्रपञ्चसार, आत्मबोध, अपरोक्षानुभूति, वाक्यवृत्ति, दशश्लोकी, सर्ववेदान्तसारसंग्रह, आनन्दलहरी आदि अनेक ग्रन्थ हैं जिनकी आचार्य शंकर ने रचना की।

यद्यपि आचार्यशंकर की महत्त्वपूर्ण रचना ब्रह्मसूत्रभाष्य है। आचार्यशंकर ने ब्रह्मसूत्रभाष्य की रचना करके अद्वैतसिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। ब्रह्मसूत्र के गूढार्थ को स्पष्ट करने के लिये सरल भाषा एवं शैली में भाष्य का प्रणयन किया। इस विषय में आचार्य वाचस्पति मिश्र कहते हैं–

नत्वा विशुद्धविज्ञानं शंकरं करुणाकरम्।
भाष्यं प्रसन्नगम्भरं तत्प्रणीतं विभज्यते।

आचार्यशंकर ने श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीयाध्याय के ग्यारहवें श्लोक से भाष्य की रचना की है। गीताभाष्य में आचार्य ने गीता के ज्ञानपरक व्याख्यान किया है। तथा तत्त्वज्ञान से ही मोक्षप्राप्ति होती है सिद्ध किया है। गीतासु केवलादेव तत्त्वज्ञानान् मोक्षप्राप्तिः न कर्मसमुच्चयाद्। इसी प्रकार द्वादश उपनिषदों पर भी भाष्य की रचना कर के सकल वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य अद्वैत ब्रह्म में ही तात्पर्य निश्चय किया है। आचार्यशंकर वैदिकधर्म के प्रचार के लिये चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। दक्षिण में श्रृंगेरीमठ, पश्चिम में शारदामठ पूर्व में गोवर्धनमठ और उत्तर में ज्योतिर्मठ की स्थापना की। मठों की व्यवस्था के लिये अपने चार शिष्यों को नियुक्त किया। जो क्रमशः पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य हैं। इस प्रकार न केवल दर्शन शास्त्र बल्कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विकास में भी आचार्य शंकर का महत्त्वपूर्ण अवदान है।

1.7 सारांश

प्रकृत पाठ्यांश वस्तुतः अद्वैत वेदान्त दर्शन का एक दिग्दर्शन है जिसमें मुख्य रूप से अद्वैत वेदान्त दर्शन का परिचय दिया गया है। यद्यपि आचार्यशंकर से भी पूर्व अद्वैत वेदान्त दर्शन की प्रतिष्ठा रही है परन्तु अद्वैत वेदान्त के रूप में प्रसिद्धि नहीं रही है। आचार्यशंकर के अनन्तर अद्वैत सिद्धान्त जितना प्रतिष्ठित हुआ उसके आधार पर

आचार्यशंकर और अद्वैत वेदान्त प्रायः पर्याय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ उसके आधार पर आचार्यशंकर और अद्वैत वेदान्त प्रायः पर्याय के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वेदान्त दर्शन के नाम से ही सर्वप्रथम अद्वैत वेदान्त ही बोधित होता है। प्रकृत पाठ में अद्वैत वेदान्त के परिचय तथा विकास के क्रम को प्रस्थान त्रयी के माध्यम से व्यवस्थित किया गया है। जो अद्वैत वेदान्त का मूल आधार है। इसके अन्तर्गत श्रुति स्मृति और सूत्र प्रस्थान के स्वरूप का अवचार किया गया है। वस्तुतः वेदान्त के विकास का आधार ही प्रस्थान त्रयी है। इसके साथ ही अद्वैत वेदान्त के प्रमुख प्रतिपाद्य विषयों का भी विवेचन किया गया है जिसमें जगत की त्रिविधसत्ताप्रातिभासिक व्यावहारिक सत्ता का सोदाहरण उपस्थापन किया गया है। साथ ही पार्मार्थिक सत्ता के विचार क्रम में ब्रह्म के स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण का भी निरूपण किया गया है। अद्वैतवेदान्त के प्रतिपाद्य विषयों में प्रमुख विषय माया के स्वरूप का विवेचन भी प्रकृत पाठ में किया गया है। जो अद्वैत विवेचन का प्रमुख आधार है। साथ ही आचार्य शंकर के जीवन यात्रा का भी विचार उपस्थित किया गया है। यह पाठ अध्येताओं के लिये लाभप्रद होगा ऐसे मुझे विश्वास है।

1.9 बोध प्रश्न

एकवाक्यात्मक बोध प्रश्न

1. वेदान्त का विकास किन प्रस्थानों में हुआ?
2. श्रुति प्रस्थान का प्रतिनिधि शास्त्र क्या है?
3. स्मृति प्रस्थान का प्रतिनिधि शास्त्र क्या है?
4. न्याय प्रस्थान का प्रतिनिधि शास्त्र क्या है?
5. न्यायप्रस्थान का नामान्तर क्या है?
6. ब्रह्मसूत्र को अन्य किस नाम से जाना जाता है?
7. अद्वैत मत में सद्वस्तु क्या है?
8. श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम छः अध्याय में क्या विवेचित है?
9. श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय छः अध्याय में क्या विवेचित है?
10. श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय छः अध्याय में क्या विवेचित है?
11. जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय का कारण क्या है?
12. अद्वयवाद के नाम से अद्वैत तत्त्व का विचार किस ग्रन्थ में है?
13. अद्वैत शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किस शास्त्र में हुआ?
14. त्रिविध परिच्छेद से क्या तात्पर्य है?
15. ब्रह्म के परिच्छेदत्रय साहित्य के क्या हेतु हैं?
16. वेदान्त शास्त्र का सम्यक् परिचय किससे होता है?
17. प्रस्थानत्रयी से क्या तात्पर्य है?
18. उपनिषद् का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय क्या है?

बहुविकल्पात्मक बोध प्रश्न

1. अद्वैत मत में दृश्यमान जगत् है।

क. मिथ्या है

ख. सत् है

ग. निर्गुण है

घ. अविकारी है

2. सर्वत्र चैतन्य रूप से विद्यमान रहता है?

क. ब्रह्म

ख. माया

ग. अविद्या

घ. प्रकृति

3. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म है?

क. स्वरूपलक्षण

ख. तटस्थलक्षण

ग. अनिर्वचनीय

घ. अभावरूप

4. सद्गृहस्थों के लिये कर्म का उपदेशक शास्त्र है?

क. गीताशास्त्र

ख. ब्रह्मसूत्र

ग. हलायुधकोश

घ. विवेकचूडामणि

5. भगवद्भक्तों के लिये भक्ति का उपदेशक शास्त्र है?

क. गीताशास्त्र

ख. ब्रह्मसूत्र

ग. हलायुधकोश

घ. अमरकोश

6. ज्ञानियों के लिये ज्ञान का उपदेशक शास्त्र है।

क. गीताशास्त्र

ख. साहित्यदर्पण

ग. हलायुधकोश

घ. अमरकोश

7. सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्। यह उक्ति है?

क. मुक्तोपनिषद् की

ख. श्रीमद्भगवद्गीता की

ग. ब्रह्मसूत्र की

घ. ईशावास्योपनिषद् की

8. अवसाद पद का अर्थ है?

क. शिथिल करना

ख. सक्रिय करना

ग. मिथ्या प्रत्यय

घ. यथार्थप्रत्यय

9. गति का अर्थ है?

क. प्राप्ति या प्रवृत्ति

ख. नाश

ग. अवसाद

घ. निश्चय करना

10. विशरण का अर्थ है?

क. प्राप्ति या प्रवृत्ति

ख. नाश

ग. अवसाद

घ. उपपत्ति

11. उपनिषद् शब्द मुख्य रूप से है?

क. ब्रह्मविद्या का बोधक शास्त्र

ख. कर्मशास्त्र

ग. अलंकार बोधक शास्त्र

घ. शब्दबोधक शास्त्र

12. सर्वापनिषदोगवो दोग्धागोपालनन्दनः उक्ति है।

क. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

ख. ब्रह्मसूत्र के अनुसार

ग. कोशग्रन्थ के अनुसार

घ. न्याय के अनुसार

सत्यासत्य विचारात्मक बोध प्रश्न

1. अद्वय के तात्पर्य आत्मा की अद्वैतता या आत्मा की सत् चित् आनन्दरूपता। सत्य

2. माया को सत् असत् से विलक्षण मिथ्याप्रत्ययरूप स्वीकार किया है। सत्य

3. माया अद्वैत ब्रह्म की शक्ति है सत्य

4. आचार्यशंकर ने श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्य का आरम्भ द्वितीय अध्याय के ग्यारहवें

श्लोक से किया है। सत्य

5. आचार्यशंकर ने गीताभाष्य में तत्त्वज्ञान से मोक्षलाभ का निषेध कहा है।
6. आचार्यशंकर ने गीताभाष्य में ज्ञानकर्मसमुच्चय से मोक्ष लाभ स्वीकार किया है। असत्य
7. ब्रह्म की जो जगत् कारणता असाधारण धर्म होने से ब्रह्म का लक्षण है। सत्य
8. उपनिषद् शब्द में सद् धातु विशरण, गति और अवसाद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सत्य
9. आचार्य शंकर ने 10 उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं। सत्य
10. संहिता ब्राह्मण ग्रन्थ गृहस्थों के लिये कर्म का उपदेश करती है। सत्य
11. सम्पूर्ण वेदान्त प्रस्थानत्रयी में विभक्त हैं। सत्य
12. उपनिषद् ज्ञानियों, साधकों योगियों के लिये ज्ञानमार्ग का उपदेश करती है। सत्य
13. उपनिषद् पद मे प्रयुक्त पउ पद समीप अर्थ के वाचक है। सत्य
14. नि शब्द निश्चय का वाचक है। जिससे तत्वों का निश्चय हो सके। सत्य

1.10 बोधप्रश्न के उत्तर

एकवाक्यात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

1. वेदान्त दर्शन का विकास श्रुति–स्मृति और न्याय प्रस्थानों में हुआ है।
2. श्रुति प्रस्थान जिसका प्रतिनिधि शास्त्र साक्षात् उपनिषद् है।
3. दूसरा स्मृतिप्रस्थान जिसका प्रतिनिधि ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता है।
4. न्याय प्रस्थान का प्रतिनिधिशास्त्र ब्रह्मसूत्र है।
5. न्याय प्रस्थान को सूत्र प्रस्थान के नाम से जाना जाता है।
6. ब्रह्मसूत्र शारीरक सूत्र या वेदान्तसूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।
7. अद्वैत दर्शन के अनुसार अद्वैत ब्रह्म ही सद्वस्तु है।
8. श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम छः अध्याय में निष्कामकर्मयोग का
9. श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय छः अध्याय में भगवद्भक्तियोग का तथा
10. श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय छः अध्याय में ज्ञानयोग का रहस्य बतलाया गया है।
11. अद्वैत मत में ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न स्थित और लय का कारण होता है।
12. हलायुध कोश ग्रन्थ में अद्वयवाद के नाम से अद्वैत तत्त्व का विचार प्राप्त होता है।
13. सर्वप्रथम वेदान्तशब्द का प्रयोग भी उपनिषद् साहित्य में ही प्राप्त होता है।
14. त्रिविध परिच्छेद से तात्पर्य है देशकालवस्तु परिच्छेद
15. ब्रह्म के परिच्छेदत्रय राहित्य में हेतु है अद्वैततत्त्व रीप ब्रह्म का निर्गुण निर्विशेष तथा निरुपाधिक होना।

16. वेदान्त के सम्यक् परिचय प्रस्थानत्रयी के माध्यम से होता है।

17. प्रस्थानत्रयी से तात्पर्य है मोक्ष तक ले जाने वाले या मोक्षमार्ग को बताने वाले तीन प्रस्थान या मार्ग या तीन आधार भूत ग्रन्थ।

18. जीव ब्रह्म जगत् विषयक विचार उपनिषद् का महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्यविषय है।

बहुविकल्पात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

1. मिथ्या है
2. ब्रह्म
3. स्वरूपलक्षण
4. गीताशास्त्र
5. गीताशास्त्र
6. गीताशास्त्र
7. मुक्तोपनिषद् की
8. शिथिल करना
9. प्राप्ति या प्रवृत्ति
10. नाश,
11. ब्रह्मविद्या का बोधक शास्त्र
12. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

सत्यासत्य विचारात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य
11. सत्य
12. सत्य
13. सत्य
14. सत्य

1.11 उपयोगी पुस्तकें

ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, पूर्णानन्दी व्याख्या सहिता, जयाकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत सिरीज आफिस, विद्याविलास प्रेस, गोपाल मन्दिर, बनारस

ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य सत्यानन्दी दीपिका सहित चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली

ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य चतुःसूत्री स्व.डॉ रमाकान्त त्रिपाठी उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान महात्मागांधी मार्ग लखनऊ

ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य रत्नप्रभा भाषानुवाद सहित अच्युत् ग्रन्थमाला काशी

चतुःसूत्री ब्रह्मसूत्र कैलाश आश्रम ब्रह्म विद्यापीठ ऋषिकेश उत्तरखण्ड

इकाई 2 अध्यासभाष्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न विषयों से परिचित होंगे।

- अध्यास के स्वरूप का ज्ञान।
- जगत मिथ्यात्व का ज्ञान।
- अध्यास लक्षण समन्वय की विधि।
- ख्याति स्वरूप के विषय में ज्ञान।
- ख्याति के भेदों का ज्ञान।

2.1 प्रस्तावना

वेदान्तो नाम उपनिषत् प्रमाणम् इस उक्ति के अनुसार वेदान्त साक्षात् वेद का अंश होने से भारतीय दर्शनों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। वेदान्त दर्शनों में भी अद्वैतवेदान्त की जो प्रतिष्ठा लोक में प्राप्त है अन्य वेदान्तसम्प्रदाय की वैसी प्रसिद्धि नहीं देखी जाती। इसका मुख्यकारण है कि साक्षात् उपनिषद् में अद्वैत प्रतिपादक **नेह नानास्ति किंचिन,**

सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति, यतोवाचो निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम इत्यादि श्रुतियां अद्वैतब्रह्म की प्रतिष्ठा करती है। अद्वैतवेदान्त की परम्परा आगे चलकर तीन प्रस्थानों में विकसित हुई है, श्रुतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान तथा न्यायप्रस्थान। श्रुतिप्रस्थान का प्रतिनिध्त्वि साक्षादुपनिषच्छास्त्र करता है, स्मृतिप्रस्थान का प्रतिनिधि शास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता है तथा न्यायप्रस्थान ब्रह्मसूत्र के द्वारा परिवर्धित और विकसित हुआ है। इस विभाजन का मुूख्य आधार है आद्य शंकराचार्य जी के द्वारा इन तीनों ही शास्त्राों पर भाष्य की रचना करना। इन तीनों को ही अद्वैतवेदान्त की परम्परा को प्रस्थान त्रयी कहा जाता है। प्रस्थान त्रयी के अन्तर्गत न्यायप्रस्थान या सूत्र प्रस्थान के आधारभूत ग्रन्थ है ब्रह्मसूत्र। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने से पूर्व आचार्य शंकर ने अध्यास भाष्य की रचना की है जिसका मुख्य प्रयोजन है कि **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** के द्वारा अधिकारी जिज्ञासु जिस ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान की जिज्ञासा की गई है उसके स्वरूप ज्ञान से पूर्व जगत् के स्वरूप को जानना आवश्यक है। जगत् के यथार्थ स्वरूप को जाने बिना ब्रह्म की जिज्ञासा करना या ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को जानना संभव नही हो सकता। क्योंकि जगत् की साक्षात् प्रतीति होती है, लोक व्यवहार सिद्ध जगत् का स्वरूपज्ञान पूर्वक उसके निराकरण के बिना ब्रह्मविज्ञान करना संभव नहीं हो सकता। यही कारण है कि ब्रह्मविचार परक **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** सूत्र के अद्वैतभाष्य करने से पूर्व अध्यास भाष्य लिखा है। प्रस्तुत पाठ्यांश में अध्ययनार्थि भी अध्यास के स्वरूप का भलीभांति ज्ञान कर सकें इसी उद्देश्य इस पाठ्यांश की रचना की गई है। इस पाठ्यांश में अध्यास के लक्षण उसके स्वरूप का सूक्ष्म दृष्ट्या अद्वैतमतानुसार विचार किया गया है। जिसके अन्तर्गत ख्याति विचार जो अध्यास का प्रमुख अंग है पर सभी मतान्तरों का ख्यातिविषयक सिद्धान्त का उपस्थापन किया गया है।

1.2 अद्वैतवेदान्त दर्शनशास्त्र

इस परिवर्तनशील संसार में अनादिकाल से आध्यात्मिक उन्नति एवं दुखों से निवृत्ति के लिये विविध दर्शनों एवं मत–मतान्तरों का प्रादुर्भाव होता आया है। भारतीय वाङ्मय के मूल वेदों को उपजीव्य बनाकर जिस दर्शन–परम्परा का उद्गम हुआ, वह वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु आचार्यों की व्याख्या एवं तर्क पद्धति के भेद के कारण वेदान्त की कई धराएं हो गई हैं। इन वेदान्तदर्शनों में जिस दर्शन का सर्वाधिक प्रसिद्धि है वह दर्शन अद्वैतवेदान्त है। अद्वैतवेदान्तदर्शन का स्वरूप निर्वचन इस प्रकार किया गया है **द्विधा इतं द्वीतम्, तस्य भावो द्वैतम्, द्वैतम् = भेदः, भेदो नास्ति यत्र तदद्वैतम्।** अर्थात् अद्वैत का अर्थ विरोधी या भेदरहित तत्त्व है। वेदान्त शब्द का अर्थ है **वेदानाम् अन्तः षिरो भागो वेदान्तः** अर्थात् वेदों के अन्त भाग उपनिषदों का नाम वेदान्त है। दर्शन शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है **दृष्यते अनेन इति दर्शनम्** अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय, उसे दर्शन कहते हैं। इस शब्द की निष्पत्ति दृष् प्रेक्षणे धतु से करणार्थक ल्युट् प्रत्यय करने से हीती है। यहाँ प्रश्न यह होता है कि किसके द्वारा क्या देखा जाय? घट–पट आदि स्थूल पदार्थों का दर्शन तो हमें नेत्रों के द्वारा हो जाता है, किन्तु सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञान के लिए ये समर्थ नहीं। जैसे– जीवात्मा का स्वरूप क्या है? इस परिदृष्यमान जगत् की उत्पत्ति का मूल क्या है? आदि प्रश्नों का उत्तर जिस शास्त्र या ज्ञान के द्वारा हमें मिलता है, उसे दर्शन कहते हैं।

शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति के प्रसंग में यह श्लोक प्रसिद्ध है– **शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रमित्यभिधीयते।**

शास्त्रं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रलक्षणवेदिभिः।
शंसनं मृतवस्त्वेकं विषयं न क्रियापरम्।।

अर्थात् शास् या शंस् धतु से शास्त्र शब्द का निष्पत्ति होती। शास् का अर्थ है– शासन करना। शंस् का अर्थ हैः प्रकट करना या वर्णन करना। शासन दो प्रकार का होता है, विधिरूप और निषेध श्रुति–स्मृति द्वारा प्रतिपादित अनुष्ठेय कार्य, जैसे स्वर्गकामो यजेत आदि विधि हैं और हिस्यात् सर्वा भूतानि आदि निषेध वाक्य हैं। इस प्रकार शासन के अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग प्रायः स्मृति धर्मशास्त्र इत्यादि के लिए होता है। शंसक या बोधक शास्त्र उसे कहते हैं, जिसके द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का उपस्थान किया जाय। क्रियापरक नहीं होता। इसी अर्थ में दर्शन को शास्त्र कहते हैं। धर्मशास्त्र प्रधनतः कर्तव्याकर्तव्य के विधयक होने के कारण पुरुषततन्त्र होते हैं, जबकि दर्शनशास्त्र वस्तुस्वरूप प्रतिपादक होने के कारण वस्तुतन्त्र। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त दर्शन का तात्पर्य है वह शास्त्र या ज्ञान, जो परमार्थरूप से भेदरहित या द्वैत विरोधी वस्तुतत्त्व का प्रतिपादन या दिग्दर्शन कराता है।

त्रिविध्परिच्छेद रहित अद्वैत ब्रह्मतत्त्व को सम्यक् प्रकार से तब तक नहीं जान सकते जब तक हम जगत् के स्वरूप को न जान लें। यहाँ कारण है कि अद्वैत अद्वैत ब्रह्मतत्त्व को देषकालवस्तुपरिच्छेदसाहित्य कहा है। जिज्ञासु अधिकारि अद्वैतब्रह्म के स्वरूप को भली प्रकार से जान सके इसके लिये आदिशंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने से पूर्व अध्यास भाष्य लिखा है जिसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन इस पाठ्यांश में किया जा रहा है।

2.3 अध्यास स्वरूप

वेदों में **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** इस मन्त्र में **एक** तथा **सत्** पद अद्वैततत्त्व की अभिव्यञ्जना कराती हैं तथा **बहुधा वदन्ति** के रूप में जा`एकत्व में अनेकत्व का ग्रहण किया गया है, वह भी अद्वैतवेदान्त के विवर्तवाद का ही सूक्ष्मरूप है। या यह कह सकते हैं अद्वैत ब्रह्म ही जगत् विवर्त का परामर्शक है। इसी प्रकार पुरुषसूक्त में अनन्तशिर, अनन्तचक्षु और अनन्त पादवाले जिस विराट् पुरुष की कल्पना की गई है, उससे भी अद्वैततत्त्व की पुष्टि होती है। अत वेदान्त में समस्त जगत् प्रपंच का निषेध कर अनिर्वचनीय रूप से परमतत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है। यही कारण है कि प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में अध्यास के विचार को प्रधानता दी गई है। परन्तु शांकर वेदान्त में भाष्यकार एवं टीकाकारों ने मुख्यता अध्यास तथा अध्यास के कारणों के विचार को सर्वोपरि माना है। क्योंकि अध्यास की निवृत्ति के विना अधिष्ठभन के यर्थाथ स्वरूप का ज्ञान होना संभव नहीं है। भाष्यकार भी शंकराचार्य ने अध्यास का स्वरूप विवेचन करते हुये कहा है कि आत्मा और जगत् का परस्पर एक दूसरे से आश्रित होकर लोक व्यवहार की प्रवृत्ति होती है। जैसे कि भाष्यकार कहते हैं– **युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमः प्रकाशवद्विरुद्ध स्वभावयोरितरेतराभावानुपपत्तौ सिद्धायां तद्धर्माणामपि सुतरामितरेतराभावानुपपत्तिः।** (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य अध्यासभाष्य) अर्थात् युष्मद् पद बोध्य जगत् तथा अस्मत् मदबोध्य ब्रह्म का परस्पर एक दूसरे में अभाव हैं तथा जगत् के धर्म एवं ब्रह्म के चेतनत्वादि धर्म का भी परस्पर अभाव सिद्ध है। फिर भी जगत् और ब्रह्म का परस्पर अध्यस्त होकर लोक व्यवहार चलता है। इसी बात को स्पष्ट किया है भाष्यकार ने **सत्यानते मिथुनीकृत्य, अहमिदम् ममेदम् इति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहारः।** (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य अध्यासभाष्य)। **अत एव अध्यास का लक्षण किया है भाष्यकार ने स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासरू अध्यासः** यहां परत्रावभासः यह अध्यास का लक्षण है, शेषपद अध्यास के सहकारिकारण हैं। अर्थात् अन्य चेतन

आत्मा रूप अधिष्ठान में यह सारा कार्यकारणात्मक जगत प्रपन्च स्वरूप से ही अध्यस्त है। यह प्रपंच अनादिकाल से प्रवाहरूप से प्रवृत्त अविद्याद्वारा चेतन आत्मा में अध्यस्त है पूर्व–पूर्व अध्यास के अनुभवजन्य संस्कार स्मृतिरूप होकर अन्तःकरण में अनूतन अनुभव को उत्पन्न करते हैं, जैसे पूर्व–पूर्व बीज उत्तरोत्तर अकुरोत्पन्न करता है, वैसे हो पूर्व–पूर्व अध्यास उत्तरोत्तर अध्यास में कारण है। जैसे शुक्ताविदं रजतम् इस स्थल में शुक्ति में जो रजत की प्रतीति हो रही है वह पूर्वानुभूत हट्टस्थ रजत के स्मृति के कारण हो रही है। अतः इस दृष्टान्त में अध्यास लक्षण का समन्वय है, क्योंकि रजत से भिन्न शुक्ति रूप अधिष्ठान में रज की प्रतीति या ज्ञान ही अध्यास है जो मिथ्यारूप है। शुक्ति रूप इस अधिष्ठान में अज्ञान से कल्पित होने के कारण रजत अध्यस्त है अथवा रज्जू रूप अधिष्ठान में अज्ञान कल्पित सर्प अध्यस्त है। अध्यास के इस लक्षण में पूर्वदृष्ट पद से सूचित किया गया है कि भ्रमकाल से पूर्व अध्यस्त वस्तु अनुभूत होनी चाहिए, अन्यथा अध्यास नहीं होगा। वस्तु व्यावहारिक हो अथवा काल्पनिक इस विषय में कोई आग्रह नहीं, क्योंकि जिस व्यक्ति ने व्यावहारिक सर्प कभी नहीं देखा किन्तु रबड़ आदि निर्मित सर्प देखा है उसे भी संस्कार बल से रज्जु आदि में सर्प भ्रम हो जाता है, इसलिए शुक्ति आदि में रजत आदि का नेदं रजतम्, अथवा नायं सर्पः इस बाध ज्ञान से बाघ होता है, अतः शुक्ति आदि में अज्ञान से कल्पित रजत आदि और उनका ज्ञान बाधित होने से कल्पित हैं।

अध्यास के लक्षण में कहा गया अवभास पद को स्पष्ट करते हुये आचार्यों ने अवभास की दो व्युत्पत्तियां की हैं–

1. अवभासनमवभासः
2. अवभाष्यते वा अवभासः।

प्रथम **अवभासनमवभासः** इस व्युत्पत्ति के द्वारा शुक्ति में रजतादि विषयक वृत्ति ज्ञान का और दूसरी अवभाष्यते वा अवभासः इस व्युत्पत्ति से शुक्ति में रजतादि का ग्रहण होता है। अर्थात् अवभास का अवभासनमवभासः यह व्युत्पत्ति करने पर जब शुक्ति में रजत का ज्ञान होता है वहां शुक्ति को देख कर बुद्धिस्थ रजत ज्ञान का शुक्ति पर आरोप कर व्यवहार होना वृत्तिज्ञान है। यह वृत्ति ज्ञान को ज्ञानाध्यास है। अर्थात् मिथ्याज्ञान का आत्मा पर आरोप ज्ञानाध्यास है। तथा अवभाष्यते वा अवभासः यह व्युत्पत्ति करने पर शुक्ति में रजतादि का ग्रहण होगा जिसे अर्थाध्यास कहा जाता है। उक्त लक्षण वाक्य में परत्र का अर्थ होता है अयोग्याध्किरण या भिन्नसत्ताकाधिष्ठान। इसलिए कुछ विद्वानों ने अध्यास का लक्षण किया है–**अधिष्ठानविषमसत्ताकोऽवभासः वा तदभाववति तत्प्रकारकोऽवभास अध्यासः।** अधिकरणगत और भिन्न सत्ताक का नामान्तर ही विषमसत्ताक है। इस प्रकार अध्यास या भ्रम के उपादान कारण भूत अज्ञान का विषय अधिष्ठान है उस अदिष्ठान में अज्ञान कल्पित को अध्यस्त कहा जाता है। जैसे शुक्ति रूप अध्ष्ठिान में अज्ञान से कल्पित रजत अध्यस्त है। या रज्जु रूप अधिष्ठान में अज्ञान कल्पित सर्प अध्यस्त है। अह अध्यास मिथ्यारूप होने से ज्ञाननिवर्तक है। अतः शुक्तिरियं नेदं रजतम् या रज्जुरयं नायं सर्पः इत्यादि ज्ञान से बाधित होने से अध्यास का मिथ्यात्व सिद्ध है।

2.4 अध्यास के भेद

वेदान्त दर्शन में मुख्यरूप से अध्यास के दो भेद माने गये हैं स्वरूपाध्यास तथा संसर्गाध्यास। शक्ति में रजत का ज्ञान स्वरूप से अध्यस्त है क्योंकि भ्रम से पूर्व वहां रजत की उपस्थिति नहीं थी भ्रमकाल में ही शुक्ति में इदं रजतम् की नूतन उत्पत्ति है। तथा शुक्ति के ज्ञान होने पर नेदं रजतम् इस ज्ञान से उसका बाध भी होता है। अतः

यह स्वरूप से अध्यस्थ होने से स्वरूपाध्यास है। तथा शुक्ति का अध्यस्त रजत के साथ संसर्गाध्यास है। शुक्ति और रजत का कल्पित तादात्म्य संबंध है। इसीलिये नेदं रजतम् इस ज्ञान से शुक्ति और रजत के संसर्गमात्र का ही बाध होता है।

वस्तुतः प्रत्येक वस्तु के दो अंश होते हैं सामान्य तथा विशेष। भ्रम के अधिष्ठान के सामान्य अंश का ज्ञान और विषेष अंश का अज्ञान, सादृष्य, भेदाग्रह आदि भी भ्रम प्रमुख कारण होते हैं। जैसे कि इयं शुक्ति यहां इदम् यह शुक्ति का सामान्य अंश है, क्यसोंकि वह यह घट है, यह पट है इस प्रकार सब वस्तुओं में उपलब्ध होता है और शुक्तित्व विशेष अंश है, क्योंकि वह केवल शुक्ति में ही रहता है सामने रजत के सदृष चमकीला पदार्थ देखकर उसमें व्यक्ति को यह रजत है ऐसा भ्रम होता है। क्योंकि प्रमाणाप्रमेयादि दोष से समीपस्थ चमकीले शुक्ति पदार्थ के विषेष शुक्तित्व अंश का ज्ञान उस व्यक्ति को नहीं होता। परन्तु जब वह भ्रान्त पुरुष प्रगतीयमान रजत को लेने जाता है तब अतिशीघ्र उसे अधिष्ठान के विशेष अंश शुक्तित्व का ज्ञान हो जाता है। वह स्वयं अनुभव करता है कि मुझे इस में रजत का भ्रम हो गया था। वस्तुतः यह शुक्ति है रजत नहीं यह ज्ञान होते ही अध्यस्त रजत और रजत ज्ञानदोनों बाधित हो जाते हैं। सहस्र यत्न करने पर भी पुनः उनकी प्रतीति नहीं होती, क्योंकि वे दानों स्वरूप से ही अध्यस्त थे, इसलिए वहाँ केवल शुक्ति ही प्रतीत होता है। शुक्ति का अध्यस्त रजत के साथ जो संसर्गाध्यास था, वह भी उसी समय बाधित हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इदम् पद में ही रजत, रजतज्ञान और संसर्गाध्यास ये तीनों कल्पित थे, अन्यथा उनका बाध नहीं होता। जैसे इदम् अंश का बाध नहीं होता। अतः ये तीनों बाधित होने से मिथ्या सिद्ध होते हैं, क्यांकि मिथ्या वस्तु का ही बाध होता है।

अध्यास के दो व्युत्पत्ति के आधार पर अध्यास के प्रकारान्तर से अन्य भेद भी कहे गये हैं। ज्ञानाध्यास एवं अर्थाध्यास। अर्थात् मिथ्याज्ञान का आत्मा पर आरोप ज्ञानाध्यास है। शुक्ति में रजतादि का ग्रहण अर्थाध्यास कहा जाता है। अर्थावयास के पुनः छः भेद हैं–

क. **धर्माध्यास–** इन्द्रियों के अधिरत्वादि धर्मों का आत्मा में अध्यास होना धर्माध्यास है। देह के गौरत्वादि अहं मूकः अहं बधिरः अहं गौरः इत्यादि।

ख. **धर्मसहित धर्मी का अध्यास–** जैसे कर्तृत्वादि धर्मों के सहित अन्तरूकरणरूप धर्मी का आत्मा में अध्यास। अहं कर्ता अहं भोक्ता इत्यादि।

ग. **सम्बन्धाध्यास–** जैसे शरीरादि में आत्मा के तादात्म्य रूप सम्बन्ध का अध्यास। जैसे– अहं चेतनः।

घ. **सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास–** जैसे सम्बन्ध्सहित शरीरादि अनात्मपदार्थ का आत्मा में अध्यस्त होते हैं।

ङ. **अन्यतराध्यास–** जैसे आत्मा में अनात्मपदार्थों के स्वरूप का अध्यास होता है, अनात्मा में आत्मा का नहीं।

च. **अन्योऽन्याध्यास–** जैसे लोहा और अग्नि की भांति आत्मा अनात्मा का परम्पर अध्यास।

उक्त अध्यास विभागों में धर्माध्यास, धर्मसहित धर्मी का अध्यास, अन्यतराध्यास वस्तुतः स्वरूपापध्यास हैं। तथा सम्बन्धाध्यास संसर्गाध्यास और स्वरूपाध्यास का संमिश्रित रूप है। चिदात्मा का प्रपञ्च के साथ संसर्गाध्यास है। सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास और अन्योऽन्याध्यास संसर्गाध्यास हैं।

2.4.1 अध्यास का लक्षणान्तर

अध्यासो नाम अतस्मिस्तद्बुद्धिः इत्यवोचाम। तद्यथा पुत्रभार्यादिषु विकलेषु सकलेषु वा अहमेव विकलरू सकलो वा इति बाह्यधर्मानात्मन्यध्यस्यति तथा देहधर्मान् स्थूलोऽहम्, कृषोऽहम्, गोरोऽहम् तिष्ठामि, गच्छामि, लङ्घयामि च, इति तथेन्द्रियधर्मान् मूकः, काणः, क्लीबो, बधिरोद्रयधर्मान् मूकः, काणः, क्लीबो, बधिरोऽन्धोऽहम् इति। तथान्तःकरणधर्मान् कामसंकल्पविचिकित्साध्यवसायादीन्।

2.5 अध्यास का प्रयोजन

यह आत्मा में अनात्मबुद्धि आदि का अध्यास ही अविद्या है। जो अनर्थ का साक्षात्कारण है। लेकिन आत्मा में अनात्मा का अध्यास क्यों स्वीकार किया गया इस का प्रयोजन क्या है यह बताते हुये कहते हैं कि वस्तु के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान को विद्या कहते हैं। अध्यास अविद्याजन्य है इसलिये अध्यास या अविद्या और उसके गुण दोषों का अधिष्ठान स्वरूप आत्मादि किञ्चिन्मात्र भी प्रभाव में आत्मा में नहीं होता। तथा इस अध्यास के द्वारा ही वैदिकावैदिक लोक व्यवहार तथा विधिनिषेध शास्त्रों की प्रवृत्ति होती है। अर्थात् अध्यस्त वस्तु अविद्यात्मक है अतः अध्यस्त वस्तु के अधिष्ठान के प्रत्यक्ष ज्ञान से उस अधिष्ठान में अध्यस्त विषय की निवृत्ति हो जाती है विद्या द्वारा ही अविद्या की निवृत्ति हो जाती है अतः अध्यास का प्रथम प्रयोजन विद्या द्वारा अविद्या की निवृत्ति है। साक्षीभाष्य अपरोक्ष अध्यास प्रमाता आदि के व्यवहार का कारण भी अविद्या है तथा ऋग्वेदादि कर्मप्रतिपादक विधिशास्त्र यजेत आदि का तथा हिंसादि निषेधबोधक निषेध शास्त्र का एवं अध्यास के विधिनिषेध रहित ब्रह्मात्मैक्य बोधक उपनिषद शास्त्र का कारण होने से अध्यास की प्रत्यक्ष सिद्धी है। तथापि देहेन्दियादि में अहं ममाभिमान रहित आत्मा का प्रमातृत्व नहीं हो सकता आत्मा के प्रमातृत्व के बिना प्रमाणादि की प्रवृत्ति नहीं हो सकती तथा अधिष्ठान के बिना प्रमाणादि की प्रवृत्ति नहीं हो सकती अर्थात् प्रमाता प्रमाण तथा प्रमेय का व्यवहार अध्यास के कारण ही होती है अतः लौकिक वैदिक व्यवहार हेतु अध्यास सप्रयोजन है। यह अध्यास रूप अविद्या जन्य व्यवहार केवल मनुष मात्र का ही नहीं होता अपितु पशुओं में भी देखी जाती है जैसे आत्मानात्मविवेक रहित पशु आदि का खान पान व्यवहार अध्यास मूलक है वैसे ही सामान्यमनुष्य का भी खानपान व्यवहार आदि अध्यास मूलक ही होता है। प्श्वादिभिष्चाविषेषात् अध्यासभाष्य। यद्यपि मनुष्य के तरह पशु में इदं प्रकार से आत्मानात्मा का विवेक ज्ञान नहीं होता तो भी यह मैं हूं यह मेरा है इत्यादि प्रकार का ज्ञान पशुओं में भी पाया जाता है। यदि पशु भी मनुष्य की तरह आत्मोपदेष का श्रवण करने में समर्थ हों तब उन्हें भी कागभुसुण्डी आदि की तरह विवेक ज्ञान हो सकता है। तथा मनुष को भी आत्मोपदेष न किया जाय तो मनुष्य भी पशुवत् विवेकहीन ही होंगे। अतः मनुष्य तथा पशु आदि दोनों के ही व्यवहार अध्यास मूलक ही हैं यह सिद्ध है।

न केवल मनुष्यादि के लौकिक व्यवहार अध्यास मूलक हैं शास्त्रीय ज्ञादि व्यवहार भी अध्यास मूलक ही होते हैं। यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान में अधिकार आदि का व्यवहार होता है जो सर्वथा अध्यास मूलक है। क्योंकि यज्ञादि कर्मकलाप में यज्ञ के सार्थकता के सन्दर्भ में अधिकारि का जब विचार किया जाता है तब आत्मा से भिन्न मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं आदि में आत्मा का शरीर में आरोप करके ब्राह्मणत्व विशिष्ट देहादि के कर्तृत्वादि का ज्ञान अपेक्षित होता है ब्राह्मणो यजेत अर्थात् ब्राह्मण याग करे इत्यादि व्यवहार आत्मा का ब्राह्मणादि शरीर में अध्यास मूलक ही है अतः विधि निषेध शास्त्रीय व्यवहार की प्रवृत्ति भी आत्मा में वर्णाश्रम आदि के अध्यास पूर्वक होती है। **तथा हि**

ब्राह्मणों यजेत इत्यादीनि शास्त्राण्यात्मनि वर्णाश्रमयोऽवस्थादिविषेषाध्यासंमाश्रित्य प्रवर्तन्ते। अध्यासभाष्य। अतः अध्यास मूलक होने से शास्त्रीय व्यवहार भी अध्यास ही है। अतः अध्यास का प्रयोजन सिद्ध है।

2.6 अध्यास की कारण सामग्री

अध्यास के कुछ सहकारी कारण हैं। जिनके कारण परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले आत्मा और अनात्मा में अध्यास होता है। इसके अन्तर्गत पूर्वानुभूत रजतादि का संस्कार और त्रिविध दोष प्रमुख हैं। प्रमातृगतदोष, प्रमेयगतदोष तथा प्रमाणगतदोष। प्रमातृ या प्रमातागबत दोष जिसे अन्तःकरणगत दोष भी कहते हैं जैसे अन्तः करणवृत्ति लोभादि जिनके कारण भ्रम या अध्यास होता है। प्रमाणगत दोष या इन्द्रियगत इन्द्रियजन्य दोष जिसके कारण वस्तु की यथार्थ प्रतीति न होने से भ्रम होता है। प्रमेयगत दोष या विषयगत दोष। शुक्ति आदि विषयगतदोष होने से भी वस्तु की यथार्थ प्रतीति न होने से भ्रम होता है। जैसे विषयगत सादृष्य या चाक्यचिक्यादि। तथा सामान्य अंश का ज्ञान तथा विशेष अंश का अज्ञान भी अध्यास के सहकारी कारण हैं।

आचार्य शंकर ने अध्यास भाष्य के आरम्भ में ही युष्मदस्मत् प्रत्ययगोचरयोः विषय विषयिणोः मतः प्रकाषवत् विरुद्धस्वभावयोः आदि के द्वारा अध्यास को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया है। वस्तुतः जब दोष युक्त चक्षु के द्वारा अन्तःकरण या वृत्ति शुक्ति देष में जाती है, तो उस अन्तःकरण या वृत्ति में विद्यमान अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य शुक्ति में विद्यमान आवरण का भंग नहीं कर पाता, क्योंकि वह अन्तःकरण या वृत्ति दोष युक्त होता है। तथा विषयावाच्छिन्न चैतन्य में विद्यमान अज्ञान का अवरण अंश शुक्ति को आवृत्त कर लेती है तथा विक्षेपांश रजताकार से परिणमित हो जाती है। जिसे अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य विषय करती है। इसलिए जो वृत्ति आरोप्य (रजत) पदार्थाकार होती हैं, वे अविद्या वृत्ति कही जाती हैं, प्रमाण वृत्ति नहीं। अतः शुक्तिस्थ रजत अविद्या का परिणाम् है, और चौतन्य का विवर्त्त माना जाता है। पुरावेवर्ति शुक्ति के साथ दोष कलुषित चक्षु के सम्बन्ध होने पर भी दोष के कारण शुक्ति अंश का ग्रहण नहीं होता। किन्तु इदन्ताकार ही अन्तःकरण वृत्ति उत्पन्न होती है, और वही वृत्ति इदन्तत्वावच्छिन्न चैतन्य की अभिव्यक्ति के आवरण का नाष कर देती है। ततः शक्तिरियं यहां इदन्ता में और इदन्ता के ग्राह्य विषय में चैतन्य प्रतिबिम्बित होकर उसी रूप में अभिव्यक्त होता है जो वृत्ति है। परन्तु शुक्ति अंश से चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होती। क्योंकि दोष के कारण शुक्ति के अंश से अवच्छिन्न चैतन्य को आवृत्त करने वाला जो चैतन्यावरण है, उसका भंग नहीं होता। इदमंष से चैतन्य का शुक्तित्व रूप से जो अनवभास है, अर्थात् इदमंष शुक्ति रूप युक्त से अभिव्यक्त नहीं होता है, इसलिए तदाकारवृत्तिरूप से उस चैतन्य का जो अनवभास है वह अध्यास है।

2.7 अविद्या का आश्रय

अविद्या का आश्रय क्या है, इस सम्बन्ध में विद्वानों के बीच मतभेद है। अविद्या के अधिकरण अर्थात् अविद्या जिस में रहता है उसका नाम आश्रय है। अपने आवरणशक्ति के द्वारा अपने विषय के विशेषांश को आवृत्त करने का नाम अविद्या का विषयत्व है। वाचस्पतिमिश्र के मतानुसार अविद्या का आश्रय जीव और विषय ब्रह्म को माना है। आचार्य मिश्र के मत में ब्रह्म को यदि अविद्या का आश्रय मानते हैं, तब तो ब्रह्म भी अज्ञ हो जायेगा। इसलिए जीव को ही अविद्या का आश्रय मानना युक्ति सगत है। परन्तु संक्षेप शारीरक और विवरणकार आदि के मत में अविद्या का आश्रय शुद्धचेतन ही

माना गया है। उनके मत में जीव तो औपाधिक है, अविद्या उपाधि लगने के बाद ही ब्रह्म की जीव संज्ञा होती है, उसके पहले तो उसका आश्रय शुद्धब्रह्म हो सकता है। भाव यह है कि केवल निर्विशेष ब्रह्म ही अविद्या का आश्रय और विषय दोनों हैं, क्योंकि पूर्वसिद्ध जो अविद्या है, उससे बाद में उसी की उपाधि से होने वाला जीव न अविद्या का आश्रय होता है और न विषय ही होता है। इसलिए उनके मत में अविद्या का आश्रय और विषय ब्रह्म ही है। यद्यपि अविद्या शुद्धचैतन्य में रहती हुई जीव और ब्रह्म का विभाग करती है।

प्रकृत में उस अध्यास रूप अविद्या का आश्रय, इदमवच्छिन्न और इदमाकार वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य है। उसमें प्रथम इदमवच्छिन्न चैतन्य का शुक्ति रूप से अनवभाास जो अविद्या है, उस अविद्या का आश्रय इदमवच्छिन्न चैतन्य है, और तदाकार वृत्ति रूप से चैतन्य का अनवभास रूप जो अविद्या है, उस अविद्या का आश्रय इदमाकार वृत्ति रूप चैतन्य है। ये दानों प्रकार की विद्या इदमवच्छिन्न चैतन्य निष्ठ और इदमाकार वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्य निष्ठ दोष के कारण क्षुभित होती हैं। यहां इदमवच्छिन्न चैतन्रूनिष्ठ अविद्या क्षुभित होकर चाकचिक्यादि से सहकृत होकर रजत के संस्कार का उद्‌बोधन करती है, और उसकी सहायता से रजत के आकार में परिणमिति भी हो जाती है। और वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यनिष्ठ अविद्या रजत का ग्रहण करने वाली वृत्ति के संस्कार के उद्‌बोधन द्वारा उसकी सहायता से वृत्ति रूप से परिणमित हो जाती है। ये दानों परिणाम अपने अपने आश्रयभूत साक्षी चैतन्य से भासित होते हैं। इसी को क्रमशः अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यास कहते हैं।

यद्यपि विषय का अवभास वृत्ति से होता है, वैसे ही उस वृत्ति का भी वृत्यन्तर से अवभास होगा, और फिर उसका अन्यवृत्ति से, इस प्रकार अनवस्था का प्रसंग का संशय नहीं करना चाहिये क्योंकि जैसे दीपक घटादि का प्रकाशक है वैसे ही अपने आपका भी प्रकाशक है। दीपक अपने प्रकाश के लिए दीपान्तर की अपेक्षा नहीं करता। इसी प्रकार वृत्ति भी स्वविषयक है, वृत्यन्तर की अपेक्षा नहीं करती। इदमाकारवृत्ति अन्तःकरण का परिणाम है, और रजताकारवृत्ति अविद्या का परिणाम है। इसलिए इदं रजतम् इस स्थल में दो ज्ञान हैं इदं रजतम्! इस स्थल में सत्य इदमांश और अनृत रजतांश इन दोनों का अन्योऽन्यात्मक होने के कारण एकत्व मात्र हो गया है।

पुनः यह नहीं कहना चाहिये कि शुक्ति दोष में रजत को यदि सत्य माना जाय तो नेदं रजतम् में जो निषेध होता है वह कैसे होगा, क्योंकि सत्य का निषेध नहीं होता। क्योंकि रजत का प्रतिभास होने से वह प्रातिभासिक सत्यत्व है, तथा पि उसमें व्यवहारिक सत्यत्व न होने के कारण सोपाधिक में उसका निषेध होना छीक है, क्योंकि व्यावहारिक सत्यत्वविशिष्ट रजत का तो वही प्रभाव ही है। अब उसके निषेध होने में कोई आपत्ति नहीं है। ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है और प्राकाशादि की व्यावहारिक सत्ता है, तथा रजतादि में प्रातिभासिक। कहा भी है–

तात्त्विकं ब्रह्मणः सत्वं व्योमादेर्व्यावहारिकम्।
शुक्त्यादेरर्थजातस्य प्रातिभासिकमिष्यते।

सर्वदर्शनसंग्रह

अविद्या की अनिर्वचनीयता

शुक्ति में रजत की ख्याति और बाध तब तक सिद्ध नहीं होता, जब तक अनिर्वचनीय की उत्पत्ति न मानी जाय। क्योंकि रजत को असत् नहीं कह सकते, क्योंकि उसकी

प्रतीति होती हैं, सत् भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों में नेदं रजतम् इस प्रकार से बाध होता है। सत् और असत् से विलक्षण जो हो उसी को अनिर्वचनीय कहा जाता है। यह अनिर्वचनीय माया का ही परिणाम हो सकता है, इसलिए इसका मायामय होना भी सिद्ध होता है। चित्सुखाचार्य अनिर्वचनीय की परिभाषा करते हैं–

प्रत्येक सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत्।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः। (चित्सुखी)

जो सत्व रूप से, असत्व रूप से और सदसदुभय रूप से विचार का विषय न हो, वही अनिर्वचनीय कहा जाता है। अर्थात् जो सत् भी न हो, असत् भी न हो तथा सदसदुभयरूप भी न हो वही अनिर्वचनीय होता है। अनिर्वचनीय माया का यही स्वरूप वेदान्तियों ने स्वीकार किया है। सच्चेन्न बाध्येत् असवच्चेन्न प्रतीयेत् इति। सदानन्द के शब्दों में–

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयातमिका नो
साङ्गप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महदद्भुतमनिर्वचनीयरूपमिति। वेदान्तसार

यहां सन्देह होता है कि यदि अज्ञान अनिर्वचनीय है और किसी भी प्रकार जाना नहीं जा सकता तो उसकी सत्ता ही नहीं होगी। इस सन्देह को दूर करने के लिए उसका विशेषण त्रिगुणात्मक दिया गया। वह अज है तथा सत्वरजस्तमो गुणात्मक है। वह अविद्या रूप है। तो आकाशादि की तरह सर्वत्र विद्यमान एवं सत्यवत् भामित होने के कारण निवृत कैसे हो सकता है। इस सन्देह को दूर करने के लिए उस ज्ञान का विशेषण ज्ञानविरोधी दिया गया। अर्थात् अज्ञान अज है, त्रिगुणात्मक है, तथापि आत्म साक्षात्कार होने पर नष्ट हो जाता है। गीता में स्पष्ट किया है–

देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते।।

इस प्रकार यह अज्ञान अविद्या, माया त्रिगुणात्मक भावरूप तो है। किन्तु यह ऐसा ही है, यही है इस प्रकार निश्चय करके प्रदर्शित नहीं किया जा सका इसलिए उसको यत्किञ्चित् कहा गया है अर्थात् सर्वशक्तिसंपन्न वह कुछ विचित्र है क्यांकि वह न तो सत् है न और न असत्, न सदसदुभय रूप है, न सावयव है, न निरवयव है और न सावयवनिरवयय उभयरूप है। उसका किसी भी रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता, इसी कारण उसको अनिर्वचनीय कहा गया है। उसका जानना वैसा ही है जैसा अत्यन्त प्रकाश के द्वारा अन्धकार को देखना। इसीलिए वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली कार कहते हैं–

अज्ञानं ज्ञातुमिच्छे यो मानेनात्यन्तमूढधीः।
स तु नूनं तम पश्येद्दीपं नोत्तमतेजसा।।

अज्ञान की सिद्धि में अहमज्ञः, मामहं न जानामि, इत्यादि प्रत्यक्षाभास ही प्रमाण है। इसी कारण श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस अज्ञान को **देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगुढाम्** कह गया है। शंकराचार्य ने इसी अज्ञान के लिए अविद्या तथा माया शब्द का प्रयोग किया है और यह कहा है कि यह माया भगवान् की अव्यक्त शक्ति है

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्यात्रिगुणात्मिकाया।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।

वह अज्ञान तीनों गुणों से युक्त है। वही अविद्या इस जगत् को उत्पन्न करती है। आचार्य चित्सुख ने भी अज्ञान को अनादि भावरूप ही माना है।

अनाविभावरूपं यद् विज्ञानेन विलोयते।
तदज्ञामिति प्राज्ञा लक्षणं संप्रचक्षते।।

अर्थात् जो अनादिभाव रूप, ब्रह्मज्ञान से विलीन हो जाता है, वही अज्ञान है। तम आसीत् मायां तु प्रकृतिं विद्यात् इत्यादि आगम भी अज्ञान में प्रमाणभूत है। आचार्य चित्सुख अविद्या माया को ईश्वर की शक्ति नहीं मानते। इसका मत है कि न च परमेश्वर ज्ञानशक्तिर्माया। माया परमेश्वर की शक्ति नहीं है, क्योंकि श्रुतियों में माया, ज्ञाननिवर्त्य कही गयी है, ईश्वर की शक्ति के नित्य होने में उसका ज्ञान निवर्त्य होना सम्भव नहीं है। अतः माया शब्द का अर्थ अनिर्वचनीय है।

इस प्रकार लक्षण और प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि अनादिभावरूप अज्ञान है। अज्ञान भ्रम का उपादान कारण है, ऐसा मानने पर भी कोई दोष नहीं है। आत्मा में अतिव्याप्ति नहीं है, क्यांकि, वह असंग, कूटस्थ है, किसी का उपादान नहीं। यदि सत्य आत्मा को विभ्रम का उपादान मानें, तो विभ्रम भी सत्य हो जायेगा। विभ्रम को स्वरूपतः सत्य भी नहीं कह सकते। अन्यथा भ्रमज्ञान के विषय का बाध न होगा, जैसे प्रमाण ज्ञान के विषय का बाध नहीं होता। यदि विभ्रम को स्वरूपतः सत्य न मानें तो इतने समय तक यह रजत प्रतीत होता रहा इस अनुभव के साथ विरोध होगा।

2.8 ख्यातिस्वरूपम्

अध्यास स्वरूप विचार प्रकरण के अन्तर्गत ख्याति विचार महत्वपूर्ण है। क्योंकि ख्याति अवभास के स्वरूप को प्रदर्शित करती है। य़द्यपि भ्रमस्थल में अधिष्ठान और आरोप्य के स्वरूप के सन्दर्भ में वादियों में मतभेद प्रसिद्ध है। तथापि अन्य में अन्य का अवभास ही अध्यास है इस अध्यास के लक्षण में सभी का ऐकमत्य है। अन्य में अन्य का अवभास कैसे होता है इस सन्दर्भ में अद्वैतभाष्यकार आचार्यशंकर ने वादियों के विभिन्न युक्तियों के आधार पर उनके सिद्धान्तों का संग्रहण अध्यास भाष्य में किया है।

ख्याति शब्द की निष्पत्तिख्या प्रकथने धतु से क्तिन् प्रत्यय करने पर होती है, जिसका अर्थ है भान या प्रतीति। अर्थात् दर्शन की परिधि में ज्ञान होना। ख्यातिवाद के सिद्धान्त के पांच भेद हैं, जो निम्नलिखित श्लोक में संकलित किये गये हैं

आत्मख्चयातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा।
तथाऽनिर्वचनीयख्यातिरित्येतत्ख्यातिपञ्चकम्
विज्ञानशून्यमीमांसातर्काद्वैतविदां मतम्।

आत्मख्याति, रसत्ख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति और अनिर्वचनीयख्याति ये पाँच ख्यातियाँ क्रम से विज्ञानवादी, शून्यवादी, मीमांसक, नैयायिक और अद्वैतवादियों को सम्मत हैं जिनका उल्लेख स्वयं भाष्यकार ने अध्यास भाष्य में किया है।

2.8.1 आत्मख्याति

आत्मख्याति के स्वरूप को तं केचिद् इत्यादि भाष्य से आत्मख्यातिवादि योगाचार के मत को व्यक्त किया है। बौद्धों के चार सम्प्रदाय हैं, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। माध्यमिक के मत में बाह्य और आभ्यन्तर सब शून्य है, अतः वे सर्वशून्यवादी कहे जाते हैं। योगाचार के मत में बाह्यार्थ शून्य है, परन्तु आभ्यन्तर

विज्ञान सत्य है। वह क्षणिक विज्ञान को ही आत्मा मानते हैं। प्रतिक्षण नष्ट होने वाला विज्ञान ही बाह्याकार रूप से प्रतीत होता है, अतः वह क्षणिक विज्ञानवादी या बाह्यार्थ शून्यवादी कहे जाते हैं। सौत्रान्तिक के मत में बाह्यार्थ तो है, परन्तु क्षणिक होने से उसका प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिए वह उसे अनुमेय मानते हैं। वैभाषिकों के मत में बाह्यार्थ है और वह प्रत्यक्ष भी होता है, सौत्रान्तिक और वैभाषिक दोनों बाह्य और आभ्यन्तर उभयात्मक पदार्थ स्वीकार करते हैं, अतः ये दोनों सवार्पस्तित्ववादी कहे जाते हैं। योगचार बाह्यार्थशून्यवादी हैं भाष्यकार पहले उनके मत को उधृत करते हैं **तं केचिद् अन्यत्र अन्यधर्माध्यासः इति वदन्ति।** आत्मख्यातिवादी विज्ञानवादी योगाचार हैं। आत्मख्यातिवादी योगाचार शुक्ति में हुए रजत के ज्ञान को असत् न मानकर बुद्धिगत स्वीकार करते हैं। इस प्रकार आत्मख्यातिवादी के अनुसार शुक्ति आदि में जो रजतजादि का भ्रम होता है उसका आधार कोई बाह्य विषय न होकर विज्ञान ही है। उनके मत में क्षणिक विज्ञान से अतिरिक्त बाह्य कुछ भी नहीं है, तो भी अनादि अविद्या वश विज्ञान ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप से जो पृथक्–पृथक् अवभासित होता है वही भ्रम है। इस प्रकार आत्मख्यातिवादी के दृष्टि में रजतादि अध्यस्त पदार्थों का अधार बाह्य शुक्ति आदि नहीं है, किन्तु बुद्धि ही है। इस प्रकार इन के सिद्धान्त में बुद्धिस्थ रजतादि की ही प्रतीति शुक्ति आदि में होती है। यद्यपि योगाचार के मत में बाह्य कोई भी पदार्थ नहीं है अर्थात् बाह्य शून्य है, इसलिए वह बाह्यार्थ शून्यवादी भी कहे जाते हैं, तथापि अनादि अविद्या वश क्षणिक विज्ञान ही रजत आदि अनेक आकारों से असत् बाह्य में अवभासित होता है। नेदं रजतम् इस ज्ञान से बाह्य रजत का बाध होने पर भी वह आन्तर विज्ञानरूप से है, क्योंकि उसके मत में प्रतीयमान रजत आदि काकार विशेष आन्तर विज्ञानरूप ही है अर्थात् वे सब आत्मा के ही आकार विशेष हैं। आत्मा ही अनेक आकारों में प्रतीत होता है, इसलिए इसे आत्मख्याति कहा जाता है।

2.8.2 असत्ख्याति

आचार्य शंकर ने अन्ये तु के द्वारा शून्यवादी माध्यमिक बौद्धों के मत को उपस्थित करते हैं माध्यमिकों के अनुसार **यत्र यदध्यासः, तस्यैव विपरीतधर्मस्वकल्पनामाचक्षत इति।** अन्यथाख्यातिवाद के अनुसार अन्य वस्तु के धर्म का अन्य वस्तु में आरोप का नाम ही अन्यथाख्याति है। शुक्ति एवं रजत के उदाहरण में दुकान में स्थित सत् रजत के धर्मों का शुक्ति में आरोप होता है। इस आरोप के ही कारण शुक्ति का रजत रूप से अन्यथा ज्ञान होता है। इसीलिए यह सिद्धान्त अन्यथाख्यातिवाद के नाम से प्रचलित हुआ। इन के मतानुसार पूर्वदृष्ट रजत का स्मरण ही नेत्रों एवंदूरस्थ रजत में सम्बन्ध की स्थापना करता है। इस प्रकार भ्रम से दूरस्थ रजत का सम्बन्ध पुरोवर्ती ह्रदम् से होने कारण ही शुक्ति में रजत का अन्यथा मान होता है। जिस शुक्ति में जिस रजत आदि का अध्यास है, उसी शुक्ति में विपरीतधर्म अर्थात् अत्यन्त असत् रजत की रजतरूप से प्रतीति या शुक्ति में अत्यन्त असत् रजत की कल्पना को अध्यास कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अत्यन्त असत् रजत की प्रतीति को असत्ख्याति कहते हैं। परन्तु यह मत ठीक नहीं है, क्योंकि यदि अत्यन्त असत् रजत की प्रतीति हो सकती है तो असत् गगनकुसुम, बन्ध्यापुत्र आदि की भी प्रतीति होनी चाहिए? परन्तु होती नहीं, इससे अत्यन्त असत् रजत आदि की भी भ्रम स्थल में प्रतीति असंभव है।

2.8.3 अन्यथाख्याति

योगाचार के मत अध्यस्त पदार्थों का आधार आभ्यन्तर स्वीकार करने से मयि रजतम् या बुद्धि के धर्म का रजत आदि बुद्धिरूप होने से अहं रजतम् ऐसी प्रतीति होनी चाहिये इदं रजतम् ऐसी प्रतीति नहीं होनी चाहिए, किन्तु इदं रजतम् इस प्रकार बाह्य प्रतीति और प्रवृत्ति दोनों होती हैं, अतः आभ्यन्तर रजत आदि मानना ठीक नहीं हैं,

क्योंकि ऐसी परिस्थिति में उसकी बाह्य प्रतीति सम्भव नहीं होगी। किन्तु बाह्य भ्रमस्थल में अन्य देशस्थ रजत आदि की अन्य शुक्ति आदि में प्रतीति होती है, अतः यह आत्मख्याति नहीं है अपितु अन्यथाख्याति। भाष्यकार तं केचित् से अन्यथाख्यातिवादियों के नैयायिक तथा वैशेषि कमत को उधृत करते हैं। उनके मत में भ्रमस्थल से भिन्न हट्ट आदि देशस्थ अनुभूत रजत आदि की नेत्र के दोष से अन्यत्र शुक्ति आदि में प्रतीति अध्यास है अर्थात् भ्रम से पूर्व हट्ट आदि में देखे गये रजत आदि नेत्रदोष के कारण संस्कार द्वारा भ्रमस्थल शुक्ति में प्रतीत होते हैं। यह प्राचीनों का मत है। नव्य नैयायिक इसका खण्डन करते हैं– यदि नेत्र दोष से ही दूरस्थ रजत आदि की सन्मुख शुक्ति आदि में प्रतीति होती है तो भ्रमस्थल और हट्ट के मध्य में वर्तमान वृक्ष आदि अन्य पदार्थों की प्रतीति क्यों नहीं होती। उनकी भी प्रतीति होनी चाहिए। परन्तु देखा यह जाता है कि मध्य में वर्तमान पदार्थों की प्रतीति नहीं होती, तो इससे यह मानना पड़ेगा कि नेत्र दोष से हट्ट आदि स्थित रजत आदि की भी शुक्ति आदि में प्रतीति नहीं होती, क्योंकि भ्रमकाल में या बाध काल में ऐसा अनुभव तो किसी को भी नहीं होता कि हट्ट आदि देश में स्थत रजत यहाँ प्रतीत हुआ। किन्तु नेत्र आदि के दोष से शुक्ति आदि ही रजत आदि के रूप से प्रतीत होते हैं।

आचार्यशंकर के अनुसार अन्यथाख्यातिवादी का मत भी ठीक नहीं है, क्योंकि वेदान्त में अध्यास के दो भेद हैं अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यास। इसके विपरीत नैयायिक और क्षणिक विज्ञानवादी के मत में केवल ज्ञानाध्यास ही अभिमत है। क्योंकि नैयायिक भ्रम ज्ञान का विषय देशान्तरस्थ रजत या रजतवृत्ति जाति को मानते हैं और क्षणिक विज्ञानवादी विज्ञान का परिणाम आकार विशेष को आभ्यन्तर सत्य तथा रजत को भ्रम ज्ञान का विषय मानते हैं, अतः इन दोनों के मत में यह अध्यास नहीं है। किन्तु शुक्ति में रजतत्व का सम्बन्ध प्रतीत होता है इसलिए इदं रजतम् यह ज्ञान मिथ्या है। बाध भी केवल रजतत्व के संसर्गमात्र का होता है।

2.8.4 अख्याति

अख्यातिवादी प्राभाकर मीमांसक हैं। ये शुक्ति में हुए रजतादि ज्ञान को भ्रम नहीं स्वीकार करते। अख्यातिवादी का विचार है कि द्रष्टा को शुक्ति देखकर जब यह ज्ञान होता है कि इदं रजतम् अर्थात् यह रजत है, तो इस द्विविध ज्ञान में इदम् का यथार्थ ज्ञान होता है और रजत का स्मरण। इदम् सम्बन्धी ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसके अतिरिक्त संस्कार जन्य सादृश्य के आधार पर ज्ञान रजतम् रजत सम्बन्धी ज्ञान स्मृतिमात्र है। प्रख्यातिवादी का तर्क है कि पुरावर्ती इदम् यह रूप यथार्थ ज्ञान, और रजतरूप स्मृति, इन दोनों भिन्न–भिन्न ज्ञानों के भिन्न रूप से ग्रहण न होने के कारण ही शुक्ति का रजत रूप से ज्ञान होता है। इसी सिद्धान्त को भेदाग्रह भी कहते हैं। इसीलिये आचार्यशंकर ने केचित्त इस भाष्य से अख्यातिवादी सांख्य तथा मीमांसकों के मत का उल्लेख करते हैं। जैसे यत्र यदध्यासस्तद्विवेकाग्रहनिबन्धनी भ्रमः जिस शुक्ति आदि में जिस रजत आदि का अध्यास लोक प्रसिद्ध है वहाँ उन दोनों विषयी ज्ञानों का भेद गृहीत न होने के कारण भ्रम यह रजत है ऐसा विशेष व्यवहार होता है, तात्पर्य यह है कि उनके मत में इदं रजतम्, अयं सर्पः इत्यादि भ्रम स्थलों में शुक्ति तथा रज्जू से दोषयुक्त नेत्र का सम्बन्ध होने पर शुक्ति तथा रज्जू का शुक्तित्व आदि विशेष अंश प्रतीत नहीं होता। किन्तु सामान्य इदम् अंश ही प्रतीत होता है। दोष युक्त नेत्र का शुक्ति आदि के साथ सम्बन्ध होने पर सादृश्य आदि से शीघ्र रजत आदि के संस्कार उद्‌भूत होकर रजत, सर्प आदि की स्मृति को उत्पन्न करते हैं। यद्यपि स्मृतिज्ञान में तथा अंश की प्रतीति होती है, परन्तु दोषवश वह लुप्त हो जाती है। इसलिए इदं

रजतम् इत्यादि भ्रम स्थलों में दो ज्ञान होते हैं। इदम् अंश का नेत्रों से प्रत्यक्षज्ञान और रजत आदि का स्मृति ज्ञान। इससे ये दोनों ज्ञान सत्य हैं और इनके विषय इदम् और रजत भी सत्य हैं। किन्तु दोषवश दोनों मतों में अन्य में अन्य के धर्म की प्रतीति इस लक्षण का व्यभिचार नहीं है। इसी प्रकार लोक व्यवहार में भी अनुभव है कि शुक्ति ही रजत के समान अवभासित होती है।

सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति। यहाँ दोनों ज्ञानों और दोनों विषयों का भेद गृहीत न होने के कारण इदं रजतम् अयं सर्पः इत्यादि विशिष्ट व्यवहार होता है, जिससे प्रवृत्ति भी होती है। परन्तु नेदं रजतम् इस ज्ञान से भेदाग्रह निमित्तक भ्रान्ति काल में दोनों ज्ञानों तथा दोनों विषयों का जो अभेद व्यवहार होता था वह बाधित हो जाता है और इससे इदं रजतम् यह पूर्व ज्ञान भ्रमरूप कहा जाता है। सांख्य और मीमांसक के मत में यह विशिष्ट व्यवहार ही भ्रमरूप है और वही बाधित होता है। उनके मत में कोई भी ज्ञान मिथ्या नहीं प्रत्युत ज्ञानमत्रा सत्य है। अतः उनका यह अभिमत भी युक्त नहीं है, क्योंकि शुक्ति में रजत भ्रम से रजतार्थी पुरुष की निष्फल प्रवृत्ति होती है, इससे भ्रमज्ञान अनुभव सिद्ध है। किञ्च अख्यातिवादी मत से तो बाधज्ञान के अनन्तर रजत की स्मृति और शुक्ति ज्ञान का भेद गृहीत न होने के कारण मेरी शुक्ति में प्रवृत्ति हुई थी, ऐसा बाधज्ञान होना चाहिए, और स्मृति में तथा अंश का लोप आदि अनेक विरुद्ध कल्पनाओं की अपेक्षा एक भ्रमज्ञान मानना युक्तियुक्त है। किञ्च भ्रमस्थल में अङ्गली निर्देश पूर्वक रजतार्थी की नियम से प्रवृत्ति होती है। जहाँ जियम से प्रवृत्ति होती है वहाँ रजत और रजतज्ञान दोनों की उत्पत्ति मानना युक्त है। अतः भ्रमस्थल में एक ही विशिष्ट ज्ञान होता है।

2.8.5 अनिर्वचनीयख्याति

शांकरवेदान्त के आचार्यों ने उपर्युक्त चार ख्यातियों को स्वीकार न करते हुए अनिर्वचनीयख्याति की स्थापना की है। अनिर्वचनपीय का लक्षण करते हुए चित्सुखाचार्य ने लिखा है

> **प्रत्येकं सदसत्वाम्यां विचारपदवीं न यत्।**
> **गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदनः।।**

अर्थात् जो विचार करने पर न सद्रूप से सिद्ध होता हो और न असद्रूप से भी सिद्ध होता हो, एवं सदसदुभयरूप से भी निरूपित न हो सके, उसी को अनिर्वचनीय कहते हैं। शुक्ति में प्रतीत होने वाले रजत को असत नहीं कह सकते, क्योंकि उसकी प्रतीति होती है। यदि सत् वस्तु की भी प्रतीति हो, तो शषशृंग, बनध्यापुत्र की भी प्रतीति होनी चाहिए। शुक्तिस्थ रजत को सत् भी नहीं कह सते, क्योंकि अधिष्ठान रूप शुक्ति के यथार्थ ज्ञान होने पर शुक्तिगत रजत का बाध हो जाता है। अनिर्वचनीय की उक्त परिभाषा के अनुसार शुक्ति एवं रज्जू आदि में अध्यस्त रजत एवं सर्पादि की सत्ता अनिर्वाच्य विषयों के अन्तर्गत आती हैं। रजत् एवं सर्पादि की जननी अविद्या एवं अध्यास का अनिर्वचनीयत्व होता है।

आचार्यशंकर ने भाष्य में **सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति। एकश्चन्द्रः स रजतवदवभासते, तथा च लोकेऽनुत्रवः। शुक्तिका हि द्वितीयवद् इति।** अध्यासवभास्य अनिर्वचनीयख्यातिवादी के अनुसार शुक्ति रजत के उदाहरण में रजत की सत्ता प्रातिभासिक है। अनिर्वचनीयख्यातिवादी ने शुक्ति एवं रजत के दृष्टान्त के आधार पर विद्याजन्य जगत् की अनिर्वचनीयता सिद्ध की है। अनिर्वचनीय होने के कारण जगत्

को न क्षणभंग के समान असत् अलीक कहा जा सकता है, न पारमार्थिक ब्रह्म के समान सत् ही कहा जा सकता है। इस प्रकार जगत् की सदसद् से विलक्षण प्रातीतिक सत्ता का समर्थन करके अनिर्वचनीयख्यातिवादी ने एक ओर अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और दूसरी ओर जगत् की व्यावहारिकता का समर्थन करके अद्वैत दर्शन को पलयानवाद व्यवहाराभाववाद होने से बचाया। क्योंकि यदि अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त में जगत् को सत् माना जाय, तो द्वैतापत्ति होगी और यदि प्रपन्च को असत् माना जाय, तो व्यवहार का अभाव होगा। असत् अलीकपदार्था में अर्थ क्रियाकारिता नहीं होती, जैसे मरुमरीचिका के लि से स्नानपानादि व्यवहार नहीं होता। अतएव माया तथा माया का कार्य प्रपन्च सदसद् एवं सदसदुभय रूप, इन तीनों से विलक्षण अनिर्वचनीय है। जिसका सत्वेन, असत्वेन एवं उभयरूपत्वेन निरूपण न किया जा सके, उसको शांकरवेदान्त में अनिर्वचनीय माना गया है।

2.9 सारांश

इस प्रकार अन्य में अन्य धर्म की प्रतीति अध्यास है यह सर्वमान्य है। व्यवहार में भी अनुभवसिद्ध है शुक्ति रजत की तरह अवभासित होती है तथा एक ही चन्द्रमा अधिकरण भेद से दो दिखाई पड़ते हैं। परन्तु यह अध्यास तो विषय गत अध्यास है रज्जु और शुक्ति या रजत या सीपी ये तो प्रत्यक्ष के विषय हैं। चेतन आत्मा तो सर्वथा अविषय है विषय में विषय और उसके धर्मों का अध्यास संभव होने पर भी सर्वथा अविषय चेनात्मा में ब्रह्म में विषय और उसके धर्मों का अध्यास कैसे संभव है इस जिज्ञासा का समाधान करते हैं चेतनात्म का यद्यपि चाक्षुष आदि प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि अस्मत्प्रत्यय बोध्य आत्मा सर्वथा अविषय नहीं है आत्मा भी अस्मत् प्रत्यय का विषय तो है। क्योंकि ऐसा कोई नियामक नहीं है कि प्रत्यक्ष योग्य विषय में प्रत्यक्षयोग्य विषय और उसके धर्मों का ही अध्यास होता है। बाह्य प्रत्यक्षयोग्य विषय का आत्मा में अध्यास होता है। क्योकि अप्रत्यक्ष आकाशादि में अज्ञ पुरुष पृथिवी आदि की छाया का आकाश नीला है इस प्रकार से अध्यास पूर्वक व्यवहार करते हैं। अतः अप्रत्यक्ष आकाश में पृथिवी आदि का अध्यास हो सकता है तो अप्रत्यक्ष आत्मा में भी अहंकारादि और उसके सुख दुख आदि धर्मों का अध्यास हो सकता है।

2.11 कुछ पुस्तकें

- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य पूर्णानन्दी व्याख्या सहिता जयकृष्णदास हरिदास गुप्त चौखम्भा संस्कृत सिरीज आफिस विद्याविलास प्रेस गोपाल मन्दिर बनारस
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य सत्यानन्दी दीपिका सहित चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य चतुःसूत्री स्व. डॉ रमाकान्त त्रिपाठी उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान महात्मागंधी मार्ग लखनऊ
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य रत्नप्रभा भाषानुवाद सहित अच्युत् ग्रन्थमाला काशी
- चतुःसूत्री ब्रह्मसूत्र कैलाश आश्रम ब्रह्म विद्यापीठ ऋषिकेश उत्तराखण्ड

2.12 बोधप्रश्न अभ्यास

एकवाक्यात्मक बोधप्रश्न

1. वेदान्तशब्द का क्या अर्थ है?

2. वेदान्त के कौन कौन से प्रस्थान हैं?
3. श्रुति प्रस्थान से किसका ग्रहण होता है?
4. स्मृति प्रस्थान से किसका ग्रहण होता है?
5. सूत्र प्रस्थान से किसका ग्रहण होता है?
6. शासन कितने प्रकार के कहे गये हैं?
7. देशकालवस्तुपरिच्छेदराहित्य स्वरूप किसका है?
8. जगत् विवर्त का परामर्शक कौन हैं?
9. अध्यास का क्या लक्षण किया है?
10. अवभासनमवभासः इस व्युत्पत्ति से किसका ग्रहण होता है?
11. अवभाष्यते वा अवभासः इस व्युत्पत्ति से किसका ग्रहण होता है?
12. अध्यास लक्षण वाक्य में परत्र पद से क्या तात्पर्य है?
13. अध्यास के प्रमुख कारण क्या हैं?

सत्यासत्यात्मक बोधप्रश्न

1. मिथ्याज्ञान का आत्मा पर आरोप ज्ञानाध्यास है।
2. शुक्ति में रजतादि का ग्रहण अर्थाध्यास कहा जाता है।
3. लौकिकवैदिक व्यवहार हेतु अध्यास सप्रयोजन है।
4. मनुष्य तथा पशु दोनों के ही व्यवहार अध्यास मूलक होते हैं।
5. शास्त्रीय यज्ञादि व्यवहार भी अध्यास मूलक ही होते हैं।
6. यदि प्रपन्च को असत् माना जाय, तो व्यवहार का नहीं हो सकेगा।
7. बह्य प्रत्यक्षयोग्य विषय का आत्मा में अध्यास होता है।
8. आचार्य मिश्र के मत में ब्रह्म अविद्या का अश्रय हैं।
9. अन्य में अन्य का अवभास ही अध्यास है इस अध्यास के लक्षण में सभी का ऐकमत्य है।
10. न्यायप्रस्थान का अधारभूत ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र है।
11. स्मृतिप्रस्थान का आधारभूत ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता है।
12. श्रुतिप्रस्थान का आधारभूत ग्रन्थ उपनिषद् है।
13. अस्मत् प्रत्यय का विषय आत्मा है।
14. अन्य में अन्य धर्म की प्रतीति अध्यास है यह सर्वमान्य है,

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. सूत्र प्रस्थान का नामान्तर है?

   क. न्यायप्रस्थान

   ख. श्रुतिप्रस्थान

   ग. स्मृतिप्रस्थान

   घ. पुराणप्रस्थान

2. न्यायप्रस्थान का आधारभूत ग्रन्थ है?
   क. ब्रह्मसूत्र
   ख. श्रीमद्भगवद्गीता
   ग. उपनिषद्
   घ. पुराण
3. स्मृतिप्रस्थान का आधारभूत ग्रन्थ है?
   क. ब्रह्मसूत्र
   ख. श्रीमद्भगवद्गीता
   ग. उपनिषद्
   घ. पुराण
4. श्रुतिप्रस्थान का आधारभूत ग्रन्थ है?
   क. ब्रह्मसूत्र
   ख. श्रीमद्भगवद्गीता
   ग. उपनिषद्
   घ. पुराण
5. इन्द्रियों के बधिरत्वाद धर्मों का आत्मा में अध्यास होना
   क. धर्माध्यास
   ख. ज्ञानाध्यास
   ग. अन्यतराध्यास
   घ. सम्बन्धाध्यास
6. शरीरादि में आत्मा के तादात्म्य रूप सम्बन्ध का अध्यास।
   क. धर्माध्यास
   ख. ज्ञानाध्यास
   ग. अन्यतराध्यास
   घ. सम्बन्धाध्यास
7. आत्मा में अनात्मपदार्थों के स्वरूप का अध्यास होता है?
   क. धर्माध्यास
   ख. ज्ञानाध्यास
   ग. अन्यतराध्यास
   घ. सम्बन्धाध्यास
8. वाचस्पतिमिश्र के मतानुसार अविद्या का विषय है?
   क. ब्रह्म
   ख. अविद्या
   ग. जगत

घ. शरीर

9. वाचस्पतिमिश्र के मतानुसार अविद्या का आश्रय है।

क. जीव

ख. अजीव

ग. विद्या

घ. अविद्या

10. अविद्या का आश्रय शुद्धचेतन ही माना गया।

क. विवरणकार

ख. भामती कार का

ग. भाष्यकार का

घ. पंचदशीकार

11. प्रत्येक सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत्।

गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः। यह उक्ति है

क. चित्सुखी

ख. ब्रह्मसूत्र

ग. गीता

घ. पद्मपुराण

12. आत्मख्याति दार्शनिक हैं।

क. विज्ञानवादी योगाचार

ख. माध्यमिक बौद्ध

ग. नैयायिक

घ. मीमांसक

13. असत्ख्यातिवाद स्वीकारते हैं?

क. विज्ञानवादी योगाचार

ख. माध्यमि बौद्ध

ग. नैयायिक

घ. मीमांसक

14. अख्यातिवाद के समर्थक हैं?

क. प्रभाकर मीमांसक हैं।

ख. नैयायिक

ग. शून्यवादी

घ. योगाचार

15. अन्यथाख्याति दार्शनिक हैं?

क. प्राभाकर मीमांसक हैं।

ख. नैयायिक

ग. शून्यवादी

घ. योगाचार

16. अनिर्वचनीयख्याति स्वीकार करते हैं?

क. अद्वैतवेदान्त

ख. नैयायिक

ग. शून्यवादी

घ. योगाचार

17. अनिर्वचनीयख्यातिवादी के अनुसार शुक्ति रजत के उदाहरण में रजत की सत्ता है।

क. प्रातिभासिक

ख. व्यावहारिक

ग. पारमार्थिक

घ. कूटस्थ नित्य

18. अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त में जगत् को सत् मानने पर,

क. द्वैतापत्ति होगी,

ख. अद्वैत सिद्ध होगा,

ग. जगत् नित्य हो जायेगा,

घ. ब्रह्म अनित्य हो जायेगा

19. अर्थ क्रियाकारिता नहीं होती है?

क. अलीकपदार्थ में

ख. सत्पदार्थ में

ग. जीव में

घ. जगत् में

2.13 बोधप्रश्नों के उत्तर

एकवाक्यात्मक बोधप्रश्न के उत्तर

1. वेदान्तो नाम उपनिषत् प्रमाणम्।
2. वेदान्त तीन प्रस्थानों में विकासित हुई है, श्रुतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान तथा न्यायप्रस्थान।
3. श्रुतिप्रस्थान का प्रतिनिधित्व साक्षादुपनिषच्छास्त्र करता है।
4. स्मृतिप्रस्थान का प्रतिनिधि शास्त्र श्रीमद्भागवद्गीता है तथा?
5. न्यायप्रस्थान ब्रह्मसूत्र के द्वारा परिवर्धित और विकसित हुआ है।
6. शासन दो प्रकार का होता है, विधिरूप और निषेध।
7. अद्वैत ब्रह्मतत्त्व को देशकालवस्तुपरिच्छेदराहित्य कहा गया है।

8. अद्वैत ब्रह्म ही जगत् विवर्त का परामर्शक है।
9. भाष्यकार ने स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः अध्यासः
10. प्रथम अवभासनमवभासः इस व्युत्पत्ति के द्वारा शुक्ति में रजतादि विषयक वृत्ति ज्ञान का ग्रहण होता है।
11. दूसरी अवभाष्यते वा अवभासः इस व्युत्पत्ति से शुक्ति में रजतादि का ग्रहण होता है।
12. अध्यास लक्षण वाक्य में परत्र पद से तात्पर्य है अयोग्याधिकरण या भिन्नसत्ताकाधिष्ठान।
13. पूर्वानुभूत रजतादि का संस्कार और त्रिविध दोष

सत्यासत्य प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. असत्य
9. सत्य
10. सत्य
11. सत्य
12. सत्य

बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. न्यायप्रस्थान
2. ब्रह्मसूत्र
3. श्रीमद्भगवद्गीता
4. उपनिषद्
5. धर्माध्यास
6. सम्बन्धाध्यास
7. अन्यतराध्यास
8. ब्रह्म
9. जीव
10. विवरणकार
11. चितसुखी
12. विज्ञानवादी योगाचार

13. माध्यमिक बौद्ध
14. प्राभाकर मीमांसक हैं।
15. नैयायिक
16. अद्वैतवेदान्त
17. प्रातिभासिक
18. द्वैतापत्ति होगी
19. अलीकपदार्थ में